श्रीः ।

धनुर्वेदसंहिता.

श्रीमद्वसिष्ठमहर्षिप्रणीता.

सरहस्या

खेतडीनरेशमहाराजसम्मानित पं० हरदेयालु

स्वामिविरचितभाषाटीकासमेता.

सेयं

क्षेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता.

शके १८२३, सं० १९५८.

भूमिका ।



पाठकगण ! यह "वासिष्ठी धनुर्वेदसंहिता" मूलमात्र मुझको इलाका जयपुरके सनथली बनथली कोढाके मोलकराम ब्राह्मणके पाससे लिखनेको संवत् १९३३ में चूरू रामगढ़में मिली जबसे यह धरीथी अब एक प्रति खड्गविलासयंत्रालयकी छपी हुई देखनेमें आई तथा एक पुस्तक अलीगढ़के जिलेमें छपी इसको देखकर हमनेभी अपनी पुस्तक पण्डित ईश्वरीप्रसादजी पाण्डेको दिखाई इनकी आज्ञानुसार इसकी भाषा अति परिश्रम करके बनाई परिश्रमका फल यथाशक्ति पण्डितजीसे पाया अब इस पुस्तकका सर्वाधिकार श्रीमान् खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाधिपको समर्पण करदिया ।

पण्डित हरदयालु स्वामी,
ग्राम-कंवाली निवासी रिवाडी–गुडगांव.

श्रीः।

धनुर्वेदसंहितास्थविषयानुक्रमणिका।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता.

ॐ साम्बसदाशिवाय नमः।

अथ वासिष्ठी धनुर्वेदसंहिताप्रारम्भः ।

अथैकदा विजिगीषुर्विश्वामित्रो राजर्षिर्गुरुं वसिष्ठमभ्युपेत्य प्रणम्योवाच ब्रूहि भगवन्धनुर्विद्यां श्रोत्रियाय दृढचेतसे शिष्याय दुष्ट शत्रुविनाशाय च। तमुवाच महर्षिर्ब्रह्मर्षिप्रवरो वसिष्ठः शृणु भो राजन्विश्वामित्र यां सरहस्यधनुर्विद्यांभगवान्सदाशिवः परशुरामायोवाच तामेव सरहस्यां वच्मि तेहिताय गोब्राह्मणसाधुवेदरक्षणाय च यजुर्वेदाथर्वसम्मितां संहिताम् ॥

अर्थ—एक समय जीतनेकी इच्छा वाला राजर्षि विश्वामित्र वसिष्ठ गुरुजीके समीप जाके प्रणाम कर बोला हे भगवन्! सुननेवाले दृढ़चित्त शिष्य मेरे अर्थ बुरे स्वभाववाले शत्रुओंके नाशके निमित्त धनुर्विद्या कहो। उसको महर्षिब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी बोले हे राजन् विश्वामित्र! सुनो जिस रहस्य धनुर्वेदविद्याको भगवान् महादेवजीने परशुरामजीके निमित्त कहाथा। उसी यजुर्वेद और अथर्ववेदसे

मिली हुई रहस्यसहित धनुर्विद्याको मैं तुमसे गो तथा ब्राह्मण, वेद और साधुओंकी रक्षाके अर्थ कहताहूं ॥

अथोवाच महादेवो भार्गवाय च धीमते ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन संशृणु॥१॥

अर्थ—इसके उपरांत महादेवजीने बुद्धिमान् परशुरामजीके जो अर्थ कहा वही मैं तेरे अर्थ कहूंगा यथार्थतासे तुम सुनो १

तत्र चतुष्टयपादात्मको धनुर्वेदः यस्य प्रथमे पादे दीक्षाप्रकारः । द्वितीये संग्रहः । तृतीये सिद्धप्रयोगाः । चतुर्थे प्रयोग विधयः ॥ २ ॥

अर्थ—महादेवजीके कहेहुए धनुर्वेदमें चार पाद हैं। जिसके पहिले पादमें धनुर्वेदके दीक्षा (उपदेश) की विधिहै । दूसरे पादमें अभ्यास करनेकी विधि है । तीसरेमें प्रक्षेपणादि प्रकार है । चौथे पादमें अस्त्रसंधानादिप्रयोगविधि है ॥ २ ॥

अथ कस्य धनुर्वेदाधिकारः
इत्यपेक्षायामाह—

धनुर्वेद गुरुर्विप्रः प्रोक्तो वर्णद्व[illegible] च ॥
युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वय[illegible]पादि-
शिक्षया ॥ ३ ॥

अर्थ- धनुर्वेद शिखानेमें ब्राह्मण तो गुरु होताहै और धनुर्वेदसे युद्धका अधिकार दोही वर्णोंके लिये कहाहै और शूद्रको तो अपने आपही शिकारआदि करनेका अधिकार है ॥ ३ ॥

चतुर्विधमायुधम्। मुक्तममुक्तं मुक्तामुक्तं यन्त्रमुक्तंचेति ॥ ४ ॥

अर्थ-मुक्त अर्थात् चक्र आदि जो हाथसे छोड़े जायँ उनको अस्त्र कहतेहैं। अमुक्त खड्ग आदि। मुक्ताऽमुक्त बरछी आदि। यंत्र मुक्त शर गोली आदि। ये चार प्रकारके आयुध कहातेहैं ॥ ४ ॥

दुष्टदस्युचौरादिभ्यः साधु संरक्षणं धर्मतः प्रजापालनं धनुर्वेदस्य प्रयोजनम् ॥ ५ ॥

अर्थ-बुरे मनुष्य डाकू चोर आदिकोंसे श्रेष्ठोंकी रक्षा करना, धर्मसे प्रजाका पालन करना, यही धनुर्वेदका प्रयोजनहै ॥ ५ ॥

एकोपि यत्र नगरे प्रसिद्धः स्याद्धनुर्धरः। ततो यान्त्यरयो दूरान्मृगाः सिंहगृहादिव ॥ ६ ॥

अर्थ-जिस नगरमें एकभी प्रसिद्ध धनुर्धारी हो उस नगर

से शत्रु दूरही चले जातेहैं जैसे सिंहके घरसे अरण्य पशु दूर चले जाते हैं ॥ ६ ॥

अथ धनुर्दानविधिः ।

आचार्येण धनुर्देयं ब्राह्मणे सुपरीक्षिते ।
लुब्धे धूर्ते कृतघ्ने च मन्दबुद्धौ न दापयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-अब धनुर्विद्या देनेकी विधि यहहै कि, आचार्य को चाहिये कि अच्छी परीक्षा किये हुए ब्राह्मणको धनुर्विद्या दें । लोभी और धूर्त और जो दी हुई विद्याका अहसान न माने ऐसे पुरुषको तथा मन्द बुद्धिको धनुर्विद्या न दे ॥ ७ ॥

ब्राह्मणाय धनुर्देयं खड्गं वै क्षत्रियाय च ॥
वैश्याय दापयेत्कुन्तं गदां शूद्राय दापयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-ब्राह्मणको धनुषदे, क्षत्रियको तलवार, वैश्यको भाला और शूद्रको गदायुद्ध शिखावे ॥ ८ ॥

धनुश्चक्रं च कुन्तं च खड्गं च क्षुरिका गदा । सप्तमं बाहु युद्धं स्यादेवं युद्धानि सप्तधा ॥ ९ ॥

अर्थ—धनुष १ चक्र २ भाला ३ खड्ग ४ छुरी ५ गदा ६ सातवाँ हाथोंसे मल्ल युद्ध इस प्रकारसे सात प्रकारका युद्ध है ॥ ९ ॥

अथाचार्यलक्षणम्।

आचार्यः सप्त युद्धः स्याच्चतुर्भिर्भार्गवः स्मृतः। द्वाभ्यां चैव भवेद्योध एकेन गण-को भवेत् ॥ १० ॥

अर्थ—अब आचार्यके लक्षण कहतेहैं। जो सातों प्रकार का युद्ध जानता है वह आचार्य होताहै। और चार प्रकार का युद्ध जो जाने वह भार्गव कहाताहै। और दो प्रकार के युद्धको जानने वाला योधा होताहै। और एकप्रकारके युद्धसे गणकसंज्ञा वाला होता है ॥ १० ॥

हस्तः पुनर्वसुः पुष्यो रोहिणी चोत्तरा-त्रयम्। अनुराधाश्विनी चैव रेवती दशमी तथा ॥ ११ ॥

अर्थ—धनुर्विद्या का मुहूर्त हस्त, पुनवसु, पुष्य, रोहिणी और तीनों उत्तरा, अनुराधा, अश्विनी और दशवीं रेवती ॥ ११ ॥

जन्मस्थे च तृतीये च षष्ठे वै सप्तमे

तथा । दशमैकादशे चन्द्रे सर्वकार्याणि कारयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ–प्रथम, तीसरे, छठे, सातवें, दशवें, ग्यारहवें, चन्द्रमामें आचार्य धनुर्विद्याके सारे काम करवावे ॥ १२ ॥

तृतीया पंचमी चैव सप्तमी दशमी तथा । त्रयोदशी द्वादशी च तिथियस्तु शुभा मताः ॥ १३ ॥

अर्थ–तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी और द्वादशी ये तिथि शुभ हैं ॥ १३ ॥

रविवारः शुक्रवारो गुरुवारस्तथैव च । एतद्वारत्रयं धन्यं प्रारम्भे शस्त्र कर्मणाम् ॥ १४ ॥

अर्थ–आदित्य, शुक्र, गुरु, शस्त्रोंके प्रारम्भकर्ममें ये तीनवार सराहनेके योग्यहैं ॥ १४ ॥

एभिर्दिनैस्तु शिष्याय गुरुः शस्त्राणि दापयेत् । संतर्प्य दानहोमाभ्यां सुरान्स्वाहाविधानतः ॥ १५ ॥

अर्थ–गुरु इनदिनोंमें दान और होमकरके देवताओंको तृप्तकर शिष्यको शस्त्र दे ॥ १५ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र कुमारीश्चाप्यनेकशः॥ तापसानर्चयेद्भक्त्या ये चान्ये शिव-योगिनः ॥ १६ ॥

अर्थ–और वहां अनेक ब्राह्मण और कन्याओंको जीमावे। और जो शिवके भक्त योगी हों उनको भक्तिसे अर्चन पूजन करै ॥ १६ ॥

अन्नपानादिभिश्चैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः । गन्धमाल्यैर्विचित्रैश्च गुरु तत्र प्रपूजयेत् १७॥

अर्थ–और पीछे गन्ध माला अन्नादि वस्त्र गहनेआदिसे गुरुजीको भूषितकर पूजनकरै ॥ १७ ॥

कृतोपवासः शिष्यस्तु धृताजिनपरिग्रहः। बद्धांजलिपुटस्तत्र याचयेद्गुरुतो धनुः ॥ १८ ॥

अर्थ–उपवास कियाहुवा शिष्य मृगचर्म धारणकियेहुये हाथ जोड़कर गुरुसे धनुषकी याचनाकरै ॥ १८ ॥

अङ्गन्यासस्ततः कार्यः शिवोक्तः सिद्धिमिच्छता ।आचार्येण च शिष्यस्य पापघ्नो विघ्ननाशनः ॥ १९ ॥

अर्थ–फिर आचार्यको शिष्यकी सिद्धिकी इच्छासे

शिवजीका कहाहुआ शाप और विघ्नोंका नाश करनेवाला अङ्गन्यास करनाचाहिये ॥ १९ ॥

शिखास्थाने न्यसेदीशं बाहुयुग्मे च केशवम् । ब्रह्माणं नाभिमध्येतु जंघयोश्चगणाधिपम् ॥ २० ॥

अर्थ—चोटीके स्थानपर जहाँ ब्रह्मरन्ध्र है वहाँ श्रीमहादेवजीको स्थापनकरै और दोनों बाहुओंपर भगवानको और नाभिके बीचमें ब्रह्माजी और जंघाओंपर गणेशजीको स्थापन करै ॥ २० ॥

ओंह्रौं शिखास्थाने शंकराय नमः। ओंह्रौं बाह्वोः केशवाय नमः। ओंह्रौं नाभि मध्ये ब्रह्मणे नमः। ओंह्रौं जंघयोर्गणपतये नमः ॥ २१ ॥

अर्थ—इन पूर्वोक्त चार मंत्रोंसे चारों देवताओंका ध्यान करता जाय और शिखादिको हाथसे छूता जाय ॥ २१ ॥

ईदृशं कारयेन्न्यासं येन श्रेयो भविष्यति ।
अन्येपि दुष्ट मंत्रेण न हिंसन्ति कदाच न २२

अर्थ—ऐसा अङ्गन्यास करावे और शिष्य करै जिससे कल्याण हो । और इस न्यासके करनेसे औरभी मारण आदि दुष्ट मंत्रोंसे नहीं मारसक्ते ॥ २२ ॥

शिष्याय मानुषं चापं धनुर्मंत्राभिमंत्रि-
तम् । काण्डात्काण्डाभिमंत्रेण दद्याद्वे-
दविधानतः ॥ २३ ॥

अर्थ–गुरु जोहै सो शिष्यको "काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ति परुषः परुषः परि" इस वेदके मंत्र से वेदविधिके साथ मनुष्य सम्बंधी धनुषको धनुषके मंत्रसे मंत्रित करके दे धनुर्मंत्र यह है ॥ २३ ॥

प्रथमं पुष्पवेधं च फलहीनेन पत्रिणा।ततः
फलयुतेनैव मत्स्यवेधं च कारयेत्॥२४॥
मांसवेधं ततः कुर्यादेवं वेधो भवेत्त्रिधा ॥
एतैर्विधैः कृतैः पुंसां शराः स्युः
सर्वसाधकाः ॥ २५ ॥

अर्थ–इसके उपरांत पहिले फूलके ऊपर फल रहित बाणसे वेध करावे पश्चात् फल सहित बाणसे मत्स्यका छेदन करावे, इसके उपरान्त मांसपर निशाना लगवावे; हे विश्वामित्र ! इसप्रकारसे तीनप्रकारका वेध होताहै इन वेधोंके किये उपरान्त सर्वसाधक बाण होजातेहैं, अर्थात् सबप्रकारका निशाना आजाताहै और सब वस्तुओंको वेध सक्ताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

वेधने चैव मांसस्य शरपातो यदा भवेत् । पूर्वदिग्भागमाश्रित्य तदा स्याद्विजयी सुखी ॥ २६ ॥ दक्षिणे कलहो घोरो विदेशगमनं पुनः । पश्चिमे धनधान्यं च सर्वं चैवोत्तरे शुभम् ॥ २७ ॥ ऐशान्यां पवनं दुष्टं विदिशोऽन्यांश्च शोभनाः । हर्षपुष्टिकराश्चैव सिद्धिदाः सर्वकर्मणि ॥ २८ ॥

अर्थ–अब वेधका शकुन कहतेहैं, यदि मांसका वेध करतेसमय, वा शमीपूजामें पुतला वेध करतेसमय वेध न होकर बाण पूर्वदिशामें गिरपड़े तो उस योद्धाकी विजय हो और सुख हो, दक्षिण दिशामें गिरे तो बहुत क्लेश हो और परदेशमें गमन हो, पश्चिममें बाण गिरे तो धन और धान्य मिले और उत्तरमें गिरे तो सब काम उत्तम हों. ईशानमें बाण गिरे तो बुरा वायु चले और सारी विदिशा श्रेष्ठ हैं, आनंद और पुष्टिकी करने वाली और सब कामोंमें सिद्धी देनेवाली है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

एवं वेधत्रयं कुर्याच्छंखदुंदुभिनिस्वनैः । ततः प्रणम्य गुरवे धनुर्बाणान्निवेदयेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-ऐसे वेधत्रय करै, शंख और नगारोंके शब्दके साथ, पीछे गुरुको प्रणामकरके धनुष और बाण उनके आगे रखदे फिर उनको गुरुदक्षिणा देकर लेले ॥ २९ ॥

इति धनुर्दानविधिः ।

अथ चापप्रमाणम् ।

प्रथमं योगिकं चापं युद्धचापं द्वितीयकम् । निजबाहुबलोन्मानात्किंचिदूनंशुभंधनुः ॥ ३० ॥

अर्थ-अब धनुषका प्रमाण कहतेहैं, पहिले तो अभ्यास करनेकेलिये (योगिक) धनुषू अर्थात् (लेजम) आदि जिससे बाहुबल बँधे और साधारणधनुषसे निशानाआदि सीखना चाहिये, जैसे (गुलेल) आदि, फिर दूसरा सींग आदिका (युद्धचाप) अपने हाथोंके बलके उन्मानसे कुछ छोटा धनुष धारण करना श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

वरं प्राणाधिको धन्वी नतु प्राणाधिकं धनुः । धनुषा पीड्यमानस्तु धन्वी लक्ष्यं न पश्यति ॥ ३१ ॥

अर्थ-प्राणोंसेभी प्यारा धनुषधारी होता है, प्राणोंसे अधिक धनुष नहीं है, इसकारण ऐसे बलका धनुष धारण करै कि; जिससे सुखपूर्वक बाण फेंकता रहै, ऐसा कैड़ा बलवान्

बोझल धनुष न धारणकरै कि जिससे छाती फटजाय क्योंकि धनुषसे पीडित धनुषधारी निशानाको भली भाँति नहीं ताक सकता, उसके खैंचने और भार उठानेकी चिन्तामें ही आरूढ रहकर हारजाताहै ॥ ३१ ॥

अतो निज बलोन्मानं चापं स्याच्छुभ कारकम् । देवानामुत्तमं चापं ततो न्यूनं च मानवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसवास्ते अपने बलके अनुमान चाप शुभ कारक है देवताओंका चाप उत्तम होता है, उससे छोटा मनुष्यों का ॥ ३२ ॥

अर्द्धपञ्चमहस्तन्तु श्रेष्ठं चापं प्रकीर्तितम् ॥ तद्विज्ञेयं धनुर्दिव्यं शंकरेण धृतं पुराम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—साढ़ेपांच हाथका चाप श्रेष्ठ कहा है, उसको दिव्य धनुष्य जानना सो पहिले श्रीमहादेवजीने धारण कियाथा ॥ ३३ ॥

चतुर्विंशांगुलो हस्तश्चतुर्हस्तं धनुः स्मृतम् तद्भवेन्मानवे चापं सर्वलक्षण-संयुतम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—चौवीस अंगुलोंका एक हाथ होताहै और चार

हाथोंका एक धनुष कहाहै, वही सारे लक्षणोंकरके सहित मनुष्योंका धनुष होता है ॥ ३४ ॥

अथ शुभचापलक्षणम्।

त्रिपर्वं पंचपर्वंवा सप्तपर्वं तथापुनः।
नवपर्वंच कोदण्डं सर्वदा शुभकारकम् ॥ ३५॥

अर्थ–श्रेष्ठ धनुषके लक्षण, तीन पोरि वा पांच पोरि और फिर सात पोरी, नव पोरीका धनुष सदा शुभकारकहै ॥ ३५॥

चतुष्पर्वं च षट्पर्वमष्टपर्वं विवर्जये
त् ॥ ३६ ॥

अर्थ–चार पोरी छः पोरी और आठ पोरियोंका धनुष वर्जितहै ॥ ३६ ॥

केषांचिच्च भवेच्चापं वित्तास्तिनवसंमित-
म् ॥ ३७ ॥

अर्थ–कितनोंहीके मतमें ९ नौ बिलांधका धनुष होताहै ३७

अथ वर्जितधनुः।

अति जीर्णमपक्कंच ज्ञाति घृष्टं तथैवच।
दग्धं छिद्रं न कर्तव्यं बाह्याभ्यंतरह-
स्तकम् ॥ ३८ ॥

गुणहीनं गुणाक्रांतं काण्डदोषसमन्वि-

तम् । गलग्रन्थि न कर्तव्यं तलमध्ये तथैवच ॥ ३९ ॥

अर्थ–वर्जित धनुषको न धारणकरै, बहुत पुराना कच्चा और जो जातिके बाँसका न हो जलाहुवा और छेदवाला बींधाहुआ और जिसके खैंचनेसे हाथ बाहर चलाजाय अथवा भीतर रहजाय, गुणरहित और गुणसे ढका हुआ अर्थात् बहुत मोटी चौड़ी गुणसे ढकाहुआ. कांडदोषके साथ अर्थात् अच्छे स्थानमें उत्पन्न हुए बाँसका न हो जिसके गलमें गाँठ हो और वैसेही जिसके तलेमें गाँठ हो ऐसा धनुष वर्जित है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अपक्कं भङ्गमायाति ह्यतिजीर्णं तु कर्कशम् । ज्ञातिघृष्टं तु सोद्वेगं कलहो बांधवैः सह ॥ ४० ॥ दग्धेन दह्यते वेश्म छिद्रं युद्धविनाशनम् । बाह्ये लक्ष्यं न लभ्येत तथैवाभ्यन्तरेपि च ॥ ४१ ॥ हीने तु संधिते बाणे संग्रामे भङ्गकारकम् । आक्रान्ते तु पुनः क्वापि लक्ष्यं न प्राप्यते दृढम् ॥ ४२ ॥ गलग्रन्थि तलग्रन्थि धनहानिकरं धनुः ॥ भिदोषैर्वि-

निर्मुक्तं सर्व कार्य करं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—विनापके बाँस वा सींग, सोना, चांदी, तांबा, लोहा इस पातआदिका धनुष टूटजाताहै, इसलिये पहिले अजमायाहुआ धनुष न हो तो भंग होजाताहै और बहुत पुराना तो कैड़ा होजाताहै और जातिके बाँसका न हो तो मनमें युद्धके समय उद्वेग करताहै, अर्थात् मनको उलटपुलट करदेताहै, और भाइयोंके साथ लड़ाई, जलेहुए धनुषके धारण करनेसे घर जलजाताहै, छिद्रसहितसे युद्धका नाश होजाताहै, क्योंकि मनमें यही चिंता लगी रहतीहै कि, कभी टूट न जाय, युद्धसमय अन्य चिंता होनेसे शीघ्र बाण नहीं चलसकते इसलिये हारजाताहै और जिस धनुषके बाहर हाथ चला जाय तो निशाना नहीं दीखे और वैसेही भीतर हाथ रहजाय तोभी निशाना नहीं दीखै, यदि ओछा बाण चढ़ावे तो संग्राममें भंगकारक है और गुणासे टकाहुआ हो तो फिर दृढ निशाना नहीं लगे और गलग्रंथि तथा तलग्रंथि ये दोनों धनुष धनकी हानि करनेवाले हैं, इन दोषोंसे रहित धनुष सब कामोंका करनेवाला होताहै ॥४०॥४१॥४२॥४३

शार्ङ्गं पुनर्धनुर्दिव्यं विष्णोः परममायुधम्।
वित्तास्तिसप्तमं मानं निर्मितंविश्वकर्मणा॥४४

अर्थ—फिर विष्णुभगवान्का परमदिव्य आयुध शार्ङ्गधनुष विश्वकर्माने सात बिलांधका बनाया ॥ ४४ ॥

न स्वर्गे न च पाताले न भूमौ कस्य-
चित्करे । तद्धनुर्वशमायाति मुक्त्वैकं
पुरुषोत्तमम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—स्वर्गमें न पातालमें न पृथ्वीपर किसीके हाथमें वह है और ना वह किसीके वशमें आताहै, एक भगवान्को छोड़कर ॥ ४५ ॥

पौरुषेयं तु यच्छार्ङ्गं बहुवत्सरशोभितम् ।
वितस्तिभिः सार्द्धषड्भिर्निर्मितं चार्थसा-
धनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—एक पुरुषका जो धनुषहै वह अच्छा बहुत वर्षोंका है और छः बिलांध और छः अंगुलका बनायाहुआधनुष धनका साधन अर्थात् देनेवाला है ॥ ४६ ॥

प्रायोयोज्यं धनुःशार्ङ्गं गजारोहाश्वसा
दिनाम् । रथिनां च पदातीनां वांशं चापं
प्रकीर्त्तितम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—बहुतकरके शार्ङ्ग धनुष हाथीके सवार और घोडों-के सवारोंको योजना करना चाहिये अर्थात् धारण करना चाहिये, आर रथियों और पैदलों का बाँसका चाप धारण करना योग्य है ॥ ४७ ॥

विश्वामित्र शृणुष्वाथ धनुर्द्रव्यत्रयं क्र-

मात्। लोहं शृंगं च काष्ठंच गदितं शंभु
ना पुरा ॥ ४८ ॥

अर्थ-हे विश्वामित्र! अब धनुषके तीन द्रव्य क्रमसे सुनो, एक तो लोह दूसरा सींग तीसरा काष्ठ का धनुष श्रीमहादेवजीने कहे हैं ॥ ४८ ॥

लोहानि स्वर्णरजतताम्रकृष्णायसानि ॥
शृंगाणि महिषशरभरोहितानाम्।शरभोऽ
ष्टपात्चतुरूर्ध्वपादो महाविषाण उष्ट्र-
मितो वनस्थः काश्मीरदेशप्रसिद्धो मृगा-
रण्यः ॥ दारूणि चन्दनवेतसधान्वन
शालशाल्मलिसाककुभवंशांजनानाम् ४९

अर्थ-लोहका अर्थ, सोना, चांदी, तांबा और काला लोहा इस्पात, सींग भैंसका शरभ (रोहि) मृगका जिसके आठ पैर होतेहैं चार ऊपर को चार नीचे और बड़े २ सींग होतेहैं ऊंटके समान ऊंचा होताहै वनमें रहनेवाला काश्मीर-देशमें उसको सब जानते हैं और काठ ये ग्रहण करने चंदन, वेत, धान्वन, शाल, सेमल, साक, ककुभ और वांस तथा अंजन वृक्ष इतनी वस्तुओंका धनुष बनताहै ॥ ४९ ॥

अथ गुणलक्षणानि।

गुणानां लक्षणं वक्ष्ये यादृशं कारयेद्गु-
णम्। पट्टसूत्रो गुणः कार्यः कनिष्ठामान-
संमितः॥ ५०॥ धनुःप्रमाणो निःसंधिः
शुद्धैस्त्रिगुणतन्तुभिः। वर्तितः स्याद्गुणः
श्लक्ष्णः सर्वकर्मसहो युधि॥ ५१॥
अभावे पट्टसूत्रस्य हरिणीस्नायुरिष्यते।
गुणार्थमपि च ग्राह्याः स्नायवो महिषी-
भवाः॥५२॥ तत्कालहतच्छागस्य तन्तु-
ना वा गुणा शुभा। निर्लोमतन्तुसूत्रेण
कुर्याद्वा गुणमुत्तमम्॥५३॥ पक्ववंशत्वचः
कार्यो गुणस्तु स्थावरो दृढः। पट्टसूत्रेण
सन्नद्धः सर्वकर्मसहो युधि॥ ५४॥ प्राप्ते
भाद्रपदे मासि त्वगर्कस्य प्रशस्यते।
तस्यास्तत्र गुणः कार्यो नवित्रः स्थावरो
दृढः॥ ५५॥ गुणा कार्या मुमुञ्जानां
भंगस्नाय्वर्कवर्मिणाम्॥

अर्थ—अब गुणाके लक्षण कहतेहैं हे विश्वामित्र! अब

जैसी गुणाकरनी चाहिये उस गुणाके लक्षण कहते हैं रेशम के सूतकी गुणा करनी चाहिये छोटीअंगुलीके मान मोटी धनुषके प्रमाणके अनुमान स्वच्छ साफ किये तिहरा डोरों को बांटकर चिकनी गुणा बनाईहुई युद्धमें सब कामोंकी सहनेवाली होती है चाहै उसको कितनी ही खेंचो टूटती नहीं यदि रेशमका डोरा न मिले तो हिरनकी स्नायु नाडियोंकी तांत गुणाके लिये लेले वा भैंसकी आंतोंकी तांत ले अथवा उसी समय मारेहुए बकरेकी तांतकी गुणा श्रेष्ठ होतीहै, रोम रहित तांतके सूतसे गुणा उत्तम बनतीहै, अथवा पकेहुए बांसकी छालकी दृढ गुणा करै रेशमके सूतसे बनीहुई गुणा युद्धमें सब काम देती हैं, भादोका महीना आयेपर आंककी त्वचाभी गुणाका काम देसकतीहै, उसका वहां नथा सूत बां-टकर गुणाकरै, और क्षत्रियोंको कपास मूंज भंग नाडी आक आदिकी बनानी चाहिये ॥५०॥५१॥५२॥५३॥५४॥५५॥

अथ शरलक्षणानि ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि शराणां लक्षणं शुभम् । स्थूलं न चापि सूक्ष्मं च नाऽपक्वं न कुभूमिजम् ॥ ५६ ॥

अर्थ– अब बाणोंके लक्षण कहतेहैं इससे आगे बाणोंके शुभलक्षण कहतेहैं, ना मोटे और न पतले न कच्चे न खोटी भूमिके उत्पन्न हुए सरकंडे ग्रहण करै ॥ ५६ ॥

हीनग्रंथिविदीर्णं च वर्जयेदीदृशं शरम् ।
पूर्णग्रंथिसुपक्वं च पाण्डुरं समयाहृतम् ॥ ५७ ॥

अर्थ–हीनगांठवाला कुचला हुआ हो तो ऐसा शर नहीं ले पूरी गांठवाला अच्छा पकाहुआ पीलेरंगका समय पर ले ॥ ५७ ॥

शरवंशा गृहीतव्या शरत्काले च गाधिज ॥ ५८ ॥

अर्थ–हे गाधिके पुत्र विश्वामित्र वृश्चिकराशिके सूर्य मार्गशीर्षमें शरके वांस वाण बनानेको लेनीचाहिये ॥ ५८ ॥

कठिनं वर्तुलं काण्डं गृह्णीयात्सुप्रदेशजम् । द्वौ हस्तौ मुष्टिहीनौ च दैर्घ्यें स्थौल्ये कनिष्ठिका ॥ ५९ ॥

अर्थ–कैडे गोल अच्छे देशमें उत्पन्नहुए शर लेकें एक वाण दोहाथ लंबा हो, एक मुट्ठी कम अर्थात् पांच अंगुल न्यून दो हाथ लंबा एक वाण हो और कनिष्ठा छोटी अंगुलीसा मोटा हो ॥ ५९ ॥

विधेया शरमानेषु यत्नेष्वाकर्षयेत्ततः ।

अर्थ–इतने अनुमानके वाण बनावे पीछे यंत्र अर्थात् धनुषपर चढ़ावे ॥

काकहंसशशादानां मत्स्यादक्रौंचकेकिनाम्। गृध्राणां कुरराणां च पक्षा एते सुशोभनाः ॥ ६० ॥

अर्थ-कव्वे, हंस, शशाद, बगुले, क्रौंचपक्षी, मोर, गीध, टटीहरी, इनके पर बाणके बांधने श्रेष्ठ हैं ॥ ६० ॥

षडंगुलप्रमाणेन पक्षच्छेदं च कारयेत्। दशांगुलमिताः पक्षाः शार्ङ्गचापस्यमार्गणे ॥ ६१ ॥

योज्या दृढाश्चतुःसंख्याः सन्नद्धाः स्नायुतन्तुभिः।

अर्थ-छः अंगुलके मान परोंको काटे, और शार्ङ्गधनुषपर चढ़ानेके बाणकेलिये दश २ अंगुलके पर चार २ प्रत्येक बाणके खडे तांतके तारोंसे बांधे ॥ ६१॥ जैसेः-

शरश्च त्रिविधो ज्ञेयः स्त्री पुमाँश्च नपुंसकः॥६२॥ अग्रस्थलो भवेन्नारी पश्चात्स्थूलो भवेत्पुमान् ॥ समो नपुंसको ज्ञेयस्तल्लक्ष्यार्थं प्रशस्यते ॥ दूरपातो युवत्या च पुरुषो भेदयेद्दृढम् ॥ ६३ ॥

अर्थ-तीन प्रकारके बाण जानने चाहिये स्त्री पुरुष और नपुंसक जो आगेसे भारी हो वह स्त्री बाण कहाताहै, और पीछे जो

भारी हो वह पुरुष, और जो एकसार हो वह नपुंसक होता है, वह नपुंसक बाण केवल निशाना सीखने के लियेही है और जो स्त्रीबाण आगेसे भारी होताहै, वह दूर जाकर मारताहै, और जो पुरुष बाण होताहै वह दृढ़ अर्थात् (मजबूत) पदार्थकोभी छेददेता और काटदेताहै ॥ ६२॥६३॥

अथ फललक्षणम्।

आरामुखं क्षुरप्रं च गोपुच्छं चार्द्धचन्द्र-कम् ॥ सूचीमुखं च भल्लं च वत्सदंतं द्वि-भल्लकम् ॥ ६४ ॥ कर्णिकं काकतुण्डं च तथान्यान्यप्यनेकशः। फलानि देशभेदे-न भवन्ति बहुरूपतः ॥ ६५ ॥

अर्थ—अब फलके लक्षण यह हैं, आरीकेसा मुखवाला १ खुरपेकासा २ गऊकी पूंछके समान आकारवाला ३ आधे चांदके आकार ४ सूईकेसे मुखवाला ५ बरछीकेसे मुखवाला ६ बछड़ेके दांतके आकारवाला ७ दोभालवाला ८ कर्णिक फूलकी पँखडीसा ९ कौवेकी चोंचके आकारवाला १० ये दश प्रकार आकार बाणके लोहेकी भालके होतेहैं औरभी देशभेदसे अनेक प्रकारके होतेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथैतेषां कर्माणि।

आरामुखेन चर्मच्छेदनम् क्षुरप्रेण बाण-

कर्तनम् बाहुकर्तनम् गोपुच्छेन लक्ष्यसाधनम् अर्धचन्द्रेण ग्रीवामस्तकधनुरादीनां छेदनम् सूचीमुखेन कवचभेदनम् भल्लेन हृदयभेदनम् वत्सदन्तेन गुण[illegible]गम् द्विभल्लेन बाणावरोधनम् कर्णिकेन लोहमयबाणानां छेदनम् काकतुण्डेन वेध्यानां वेधं कुर्यात् ॥

अथैषां स्वरूपाणि ।

आरामुख



क्षुरप्र



गोपुच्छ



अर्द्धचन्द्र



सूचीमुख



भल्ल



वत्सदन्त



द्विभल्ल

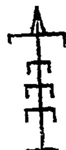


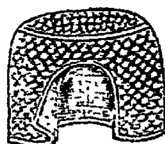










अर्थ–आरामुखसे ढालछेदन, क्षुरप्रसे हाथ काटना, गोपुच्छसे निशाना मारना, अर्द्धचन्द्रसे माथा गरदन बाण काटना, धनुष काटना, सूचीमुखसे बख्तर छेदन, भल्लसे हृदयको फोडना, वत्सदंतसे धनुषकी गुणा काटना, द्विभल्लसे बाण रोकना, कर्णिकसे लोहेके बाण काटना, काकतुण्डसे वेधनके योग्योंका वेध विचारसे करे॥

अन्यद्गोपुच्छकं ज्ञेयं शुद्धकाष्ठविनिर्मितम्। मुखे च लोहकंटेन विद्धं त्र्यंगुलसंमितम्॥ ६७॥

अर्थ–और गोपुच्छ बाण जानना शुद्ध काष्ठका बनाहुवा उसके मुखपर तीन अंगुलका लोहका कांटा विंधा हुवा होताहै॥ ६७॥

बाणस्य फलकस्थाने (सेह) कंटक-योजनाद्गोपुच्छबाणो भवति। अनेन शराभ्यासस्तथा लक्ष्याभ्यासो वा कर्तव्यः॥ ६८॥

अर्थ—बाणके फलकस्थानमें (साई) का कांटा लगाकर गोपुच्छ बाण होताहै, इसमें निशाना और बाणफेकनेका अभ्यास करना चाहिये॥ ६८॥

अथ पायनम्।

इषुफले शरशरवंशामूललेपनाद्व्रणोऽसाध्यो भवति। तच्चिन्हमेतत्। यस्मिञ्छरवंशासमूहे स्वातिबिन्दुर्निपतति स पीतवर्णो भवति तस्य मूले विषमुत्पद्यते तन्मूलं ग्राह्यं सच सर्वदा पवनाभावेपि कम्पते इदमेव तल्लक्ष्मेति॥ ६९॥

अर्थ—अब फलोंका पायन लिखतेहैं, बाणके फलपर सरकंडेकी जड़के लेपसे घाव असाध्य होताहै, उसकी पहिचान यह है कि, जिस झूंडके समूहपर स्वातिकी बूंद पडतीहै, वह पीले रंगका होजाताहै, उसकी जड़में विष उत्पन्न होताहै, वह जड़ लेनी चाहिये, और वह सदा पवनभी न चलताहो तोभी कांपता रहताहै, यही उसका चिह्न है॥ ६९॥

फलस्य पायनं वक्ष्ये दिव्यौषधिविलेपनैः
येन दुर्भेद्यवर्माणि भेदयेत्तरुपर्णवत् ॥७०॥

अर्थ—फलोंका पायन कहेंगे, दिव्य औषधियोंके लेपनसे, जो किसीसेभी न कटें ऐसे कवचोंको वृक्षके पत्तोंकी नाई काटदेवें ॥ ७० ॥

पिप्पली सैंधवं कुष्ठं गोमूत्रे तु सुपेषयेत् । अनेन लेपयेच्छस्त्रं लिप्तं चाग्नौ प्रतापयेत् ॥ ७१ ॥ शिखिग्रीवानुवर्णाभं तप्तपीतं तथौषधम् । ततस्तु विमलं तोयं पाययेच्छस्त्रमुत्तमम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—पीपल सेंधानमक कूठ इन तीनोंको गोमूत्रमें अच्छी पीसे, फिर इससे शस्त्रको लीपे पीछे उसको अग्निमें तपावे, वह मोरकी गरदनके सदृश नीला होजाय तपानेसे औषधिको पीजाय पीछे स्वच्छ जलमें बुझाव दे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

अथ नाराचनालीकशतघ्नीनां वर्णनम् ।

सर्वलोहास्तु ये बाणा नाराचास्ते प्रकीर्तिताः । पञ्चभिः पृथुलैः पक्षैर्युक्ताः सिद्ध्यंति कस्यचित् ॥ ७३ ॥

अर्थ-अथ नाराच और नालीक और शतघ्नीका वर्णन करतेहैं, जो बाण सब लोहके होतेहैं, वे नाराच कहेहैं, वे पांच मोटेपर बांधनेसे किसीको सिद्ध होतेहैं ॥ ७३ ॥

नालीका लघवो बाणा नलयंत्रेण नोदिताः । अत्युच्चदूरपातेषु दुर्गयुद्धेषु ते मताः ॥ ७४ ॥

अर्थ-जो कि नलयंत्रसे फेंके जातेहैं, वे लघु अर्थात् छोटे२ बाण कहातेहैं, उनका नाम नालीक है, अर्थात् गोलीका नाम नालीक बाण है, और नलयंत्र नाम बंदूकका है, सो बहुत ऊंचे और दूर फेंकनेमें तथा गढ़युद्धमें काम आतेहैं ॥ ७४ ॥

सिंहासनस्य रक्षार्थं शतघ्नीः स्थापयेद्गढे। रंजकं बहुलं तत्र स्थाप्यं च बहुधीमता ॥ ७५ ॥

अर्थ-तख्तकी रक्षाके लिये गढ़में तोपें स्थापनकरैं, और बहुतसी बारूद और गोले गोलीभी स्थापनकरैं ॥ ७५ ॥

अथ स्थानमुष्ट्याकर्षणलक्षण ।

स्थानान्यष्टौ विधेयानि योजने भिन्नकर्मणाम् । मुष्टयः पंच समाख्याता व्यायाः पञ्च प्रकीर्तिताः ॥ ७६ ॥

अर्थ-इनके अनंतर स्थान मुष्टि आकर्षणके लक्षण कहतेहैं, जुदे जुदे काममें, बाणप्रयोग करनेकेलिये, स्थान आठ प्रकारके करने और पांचप्रकारकी मुट्ठी कहीहैं, तथा पांच प्रकारके व्याय कहेहैं ॥ ७६ ॥

अग्रतो वामपादश्च दक्षिणे चानुकुञ्चितम् ॥ प्रत्यालीढं प्रकर्तव्यं हस्तद्वयसविस्तरम् ॥ ७७ ॥

अर्थ-बाँयां पैर आगे और दाहिना पीछे सुकड़ा हुआ यह दोहाथकी प्रत्यालीढ़गति कहातीहै ॥ ७७ ॥

आलीढे तु प्रकर्तव्यं सव्यं चैवानुकुञ्चितम् । दक्षिणन्तु पुरस्ताद्वा दूरपाते विशिष्यते ॥ ७८ ॥

अर्थ-आलीढ़गतिमें धनुषधारीको बायां पैर सकोडना, और दाहनी आगे कर बाणफके तो बाण दूर जाय ॥ ७८ ॥

पादौ सविस्तरौ कार्यौ समौ हस्तप्रमाणतः। विशाखस्थानकं ज्ञेयं कूटलक्ष्यस्य वेधने ॥ ७९ ॥

अर्थ-पैरोंको विस्तारके साथ करै एक हाथके प्रमाण, उसका नाम विशाख गति है कूटलक्ष्यके वेधनमें इसका उपयोग होताहै ॥ ७९ ॥

समपादैः समौ पादौ निष्कम्पौ च सुसंगतौ। असमे च पुरो वामे हस्तमात्रणतं वपुः॥ ८०॥

अर्थ—समपादोंसे बराबर दोनों पैर विनाहि लिये खड़ा हो बाण फेंके, और असमगातिमें आगे बायां पैर एक हाथ आगे रहै और शरीर झुकाहुवा॥ ८०॥

आकुंचितोरू द्वौ यत्र जानुभ्यां धरणीं गतौ। दर्दुरक्रमामित्याहुः स्थानकं दृढभेदने॥ ८१॥

अर्थ—जहां दोनो उरू सकोड कर जानुओंको धरतीपर टेके, वह दर्दुरक्रम कहाहै, दृढस्थानको भेदनकरनेके—लिये॥ ८१॥

सव्यं जानु गतं भूमौ दक्षिणं च सुकुञ्चितम्। अग्रतो यत्र दातव्यं तं विद्याद्गरुडक्रमम्॥ ८२॥

अर्थ—बायां तो पृथिवीपर हो और दाहनां सुकड़ा हुवा हो, आगेसे जो दे उसको गरुड़क्रम जानना॥ ८२॥

पद्मासनं प्रसिद्धन्तु उपविश्य यथाक्रमम्। धान्विनां तत्तु विज्ञेयं स्थानकं शुभलक्षणम्॥ ८३॥

अर्थ—पद्मासन प्रसिद्ध है, इसका जैसा क्रम है वैसे बैठकर बाण मारे, धनुषधारीको जानना चाहिये, यह शुभलक्षण- वाला स्थानक है ÷ ॥ ८३ ॥

अथ गुणमुष्टयः ।

पताका वज्रमुष्टिश्च सिंहकर्णस्तथैव च ।
मत्सरी काकतुण्डी च योजनीया यथा-
क्रमम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—अब गुणाकी मुष्टि कहतेहैं, पताका, वज्रमुष्टि, सिंहकर्ण, मत्सरी और काकतुण्डी ये पांच प्रकार गुणाके हैं ॥ ८४ ॥

दीर्घा तु तर्जनी यत्र ह्याश्रितोऽङ्गुष्ठमूल-
कम् । पताका सा च विज्ञेया नलिका-
दूरमोक्षणे ॥ ८५ ॥

अर्थ—जहां तर्जनी दीर्घ कीजाय और अँगठेकी जड़के पास हो, वह पताका जाननी इससे नालिकानाम बाण जिसमें रंजक और लोहकण भरेहों, उसके छोड़नेके लिये है ॥ ८५ ॥

तर्जनीमध्यमामध्यमंगुष्ठो विशते यदि ।

÷ विशाखं-समंपाद-असमंपाद-दर्दुरक्रम-गरुडक्रम-शुभल क्षण- इनका चित्र पृथक् है वहां देखलो.

वज्रमुष्टिस्तु सा ज्ञेया स्थूले नाराच-
मोक्षणे ॥ ८६ ॥

अर्थ–तर्जनी और मध्यमाके बीचमें यदि अंगूठा प्रवेश हो, वह वज्रमुष्टि जाननी, मोटा लोहका बाण छोड़ने-केलिये इसका उपयोग करना ॥ ८६ ॥

अंगुष्ठमध्यदेशन्तु तर्जन्यग्रं सुसंस्थि-
तम् । सिंहकर्णः स विज्ञेयो दृढलक्ष्यस्य
वेधने ॥ ८७ ॥

अर्थ–अँगूठेके बीचमें तर्जनीका अग्र रक्खे, वह सिंहकर्ण जानना दृढ़ लक्ष्यके वेधनेमें वह उपयोगी है ॥ ८७ ॥

अंगुष्ठनखमूले तु तर्जन्यग्रं च संस्थितम् ।
मत्सरी सा च विज्ञेया चित्रलक्ष्यस्य
वेधने ॥ ८८ ॥

अर्थ–अँगूठेके नखकी जड़में तर्जनीका अग्रभाग धरै, वह मत्सरी जाननी चित्रकारीके निशानेके वेधनेमें यह उपयोगी है ॥ ८८ ॥

अंगुष्ठाग्रे तु तजन्या मुखं यत्र निवे-
शितम् । काकतुंडी च सा ज्ञेया सूक्ष्म-
लक्ष्ये सुयोजिता ॥ ८९ ॥

अर्थ–जहां तर्जनीका मुख अँगूठेके आगे निवेशित

कियाहो, वह काकतुण्डी जानना सूक्ष्म लक्ष्यमें यह मुद्रा करनी ॥ ८९ ॥

अथ धनुर्मुष्टिसंधानम् ।

संधानं त्रिविधं प्रोक्तमधऊर्ध्वं समं सदा । योजयेत्त्रिप्रकारं हि कार्येष्वपि यथाक्रमम् ॥ ९० ॥

अर्थ–अब धनुषकी मुष्टीका प्रकार कहतेहैं, संधान तीन प्रकारका कहाहै, अधःसंधान १ ऊर्ध्वसंधान २ और समसंधान ३ ॥ ऊपर १ नीचे २ बराबर ३ इनको जैसा कार्य हो उसमें यथाक्रमसे ३ तीन प्रकारसे योजना करै ॥ ९० ॥

अधश्च दूरपातित्वे समे लक्ष्ये सुनिश्चले। दृढास्फोटं प्रकुर्वीत ऊर्ध्वसंधानयोगतः ॥ ९१ ॥

अर्थ–दूर बाण फेकनेको अधःसंधान करना जो अचल वस्तु हो उस पर सम संधान करना, और वस्तुके तोड़नेके लिये ऊर्ध्वसंधान करना ॥ ९१ ॥

अथ व्यायाः ।

कैशिकः केशमूले वै शरशृंगे च सात्विकः । श्रवणे वत्सकर्णश्च ग्रीवायां

भरतो भवेत् ॥ ९२ ॥ अंसके स्कंधनामा
च व्यायाः पंच प्रकीर्तिताः ॥

अर्थ-केशोंकी जड़में कैशिक और सात्विकशर शृंगतक और वत्सकर्ण कानतक, ग्रीवातक भरत और स्कन्धनाम व्याय कंधेतक, ये पांच व्याय अर्थात् बाणके खैंचनेके प्रकार कहेहैं ॥ ९२ ॥

कैशिकश्चित्रयुद्धेषुह्यधोलक्ष्येषु सात्विकः।
वत्सकर्णः सदा ज्ञेयो भरतो गूढभेदने ॥९३॥
दृढभेदे च दूरे च स्कंधनामानमुद्दिशेत् ॥

अर्थ-कैशिक चित्रयुद्धमें और अधोलक्षोंमें सात्विक तथा वत्सकर्ण सदा जानना और गूढभेदमें भरत और दृढ़भेदमें तथा दूर बाण फेंकनेको स्कंधनाम व्याय कहाहै ॥ ९३ ॥

अथलक्ष्यम्।

लक्ष्यं चतुर्विधं ज्ञेयं स्थिरं चैव चलं तथा।
चलाचलं द्वयचलं वेधनीयं क्रमेण तु ॥९४॥

अर्थ-अब निशाना कहते हैं, चार प्रकारका लक्ष्य जानना एक स्थिर, दूसरा चल, तीसरा चलाचल, चौथा द्वयचल इनको क्रमसे वेधना चाहिये ॥ ९४ ॥

आत्मानं सुस्थिरं कृत्वा लक्ष्यं चैव

स्थिरं बुधः । वेधयेत्त्रिप्रकारं तु स्थिर-
वेधी स उच्यते ॥ ९५ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् अपनेको स्थिर करके तीनों प्रकारके संधानोंसे लक्ष्यको वेधे वह स्थिरवेधी कहता है, तीन प्रकार पहिले कहचुकेहैं ॥ ९५ ॥

चलन्तु वेधयेद्यस्तु आत्मस्थानेषु संस्थि-
तः । चलंलक्ष्यंतु तत्प्रोक्तमाचार्येण शिवे-
न वै ॥ ९६ ॥

अर्थ—चलते हुएको जो अपने स्थानपर बैठाहुआ वेधे उसको युद्धके आचार्य शिवजी महाराज चललक्ष्य कहते हैं ॥ ९६ ॥

धन्वीतु चलते यत्र स्थिरलक्ष्ये समा
हितः । चलाऽचलं भवेत्तच्च ह्यप्रेमयम
चिंतितम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—जहाँ धनुषधारी तो स्थिर लक्ष्यपर सावधानहोकर चलता है, उसका नाम चलाचलहै, जो चिंतनमें नहीं आताहै यह अत्यंत उत्तम लक्ष्य है ॥ ९७ ॥

उभावेव चलौ यत्र लक्ष्यं चापि धनुर्द्धरः ॥
तद्विज्ञेयं द्वयचलं श्रमेण बहुसाध्यते ॥ ९८ ॥

अर्थ—जहाँ धनुषधारी और लक्ष्य दोनों चलतेहों,

उसको दृयचल जानों, वह बड़ी मेहनतसे सिद्ध होताहै ॥ ९८ ॥

श्रमेणास्खलितं लक्ष्यं दूरं च बहुभेदनम्।
श्रमेणास्खलिता कृष्टिः शीघ्रसंधान
माप्यते ॥ ९९ ॥

अर्थ–श्रमसे छोडाहुआ निशाना, और बहुत दूरका भेदन और श्रमसे मर्यादाके साथ खिंचाहुआ बाण शीघ्रसंधानको प्राप्त होताहै ॥ ९९ ॥

श्रमेण चित्रयोधित्वं श्रमेण प्राप्यते
जयः। तस्माद्गुरुसमक्षं हि श्रमः कार्यो
विजानता ॥ १०० ॥

अर्थ–श्रमसे चित्रयोधा होताहै और श्रमसेही जय प्राप्त होताहै इससे जाननेवालेको गुरुके सामनेही परिश्रम करना चाहिये ॥ १०० ॥

प्रथमं वामहस्तेन यः श्रमं कुरुते नरः।
तस्य चापक्रियासिद्धिरचिरादेव जाय
ते ॥ १ ॥

अर्थ–पहले बाँयेंहाथसे जो मनुष्य श्रम करे, उसको धनुषकी क्रियासिद्धि शीघ्रही होजातीहै ॥ १ ॥

वामहस्ते सुसंसिद्धे पश्चाद्दक्षिणमारभेत् ।
उभाभ्यां च श्रमं कुर्यान्नाराचैश्च शरै-
स्तथा ॥ २ ॥

अर्थ—बाँयाँ हाथ सिद्ध हुए पीछे दाहिनेसे आरंभ करै फिर दोनोंसे नाराच और बाणोंसे श्रमकरै ॥ २ ॥

वामेनैव श्रमं कुर्य्यात्सुसिद्धे दक्षिणे करे ।
विशाखेनासमेनैव रथी व्याये च कैशि-
के ॥ ३ ॥

अर्थ—जब दाहिना हाथ सिद्ध होजाय तब बाँयेसेही श्रम करै, विशाखगति और असमपादगतिसे रथी कैशिक नाम व्यायसे ॥ ३ ॥

उदिते भास्करे लक्ष्यं पश्चिमायां निवे-
शयेत् । अपराह्णे च कर्तव्यं लक्ष्यं पूर्वदि-
गाश्रितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—सूर्य्यके उदयसे दोपहर तक पश्चिमादिशामें निशाना करै और अपराह्ण अर्थात् दोपहर टलेपीछे पूर्व दिशामें लक्ष्यसाधन करै ॥ ४ ॥

उत्तरेण सदा कार्यमवश्यंमवरोधि-

कम्। संग्रामेण विना कार्यं न लक्ष्यं दक्षिणामुखम् ॥ ५ ॥

अर्थ–उत्तर दिशाको सदा अवश्यही अवरोधसे निशाना करना चाहिये, परन्तु संग्रामके विना दक्षिणके सामने मुख करके निशाना कभी न लगावे सिद्धान्त यह हुवा कि, सूर्य सदा पीठ पीछे वा दाहिनी ओर हो ॥ ५ ॥

षष्टिधन्वंतरे लक्ष्यं ज्येष्ठं लक्ष्यं प्रकीर्तितम्। चत्वारिंशन्मध्यमंच विंशतिश्च कनिष्ठकम् ॥ ६ ॥

अर्थ--६० साठ बाण धनुषके लिये रक्खें, वह श्रेष्ठ निशाना कहाताहै. ४० चालीस बाणोंसे मध्यम और २० वीस बाणोंसे कनिष्ठ लक्ष्य कहाताहै ॥ ६ ॥

शरोंका यह प्रमाण कहदिया अब नाराचोंका कहतेहैं।

चत्वारिंशच्च त्रिंशच्च षोडशैव भवेत्ततः॥ ७ ॥

अर्थ- चालीस तीस और पीछे सोला नाराचोंका अर्थात् समस्त लोहमय बाणोंका रखनेवाला क्रमसे उत्तम मध्यम कनिष्ठ कहाता है ॥ ७ ॥

चतुः शतैश्च काण्डानां योहि लक्ष्यं विस-

जयेत् । सूर्योदये चास्तमाने स ज्येष्ठो धान्विनां भवेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—सूर्यके उदयमें और अस्तमें चारसौ बाणोंका जो लक्ष्य छोड़े वह धनुषधारियोंमें बडाहोताहै ॥ ८ ॥

त्रिशतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः । लक्ष्यं च पुरुषोन्मानं कुर्याच्चन्द्रकसंयुतम् ॥ ९ ॥

अर्थ--तीनसौसे मध्यम और दोसौसे कनिष्ठ इतना उन्मान मनुष्यका है, यह निशाना चन्द्रकके संयुत करै अर्थात् चांदमारीसे करै ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वभेदी भवेज्ज्येष्ठो नाभिभेदी च मध्यमः पादभेदी तु लक्ष्यस्य स कनिष्ठो मतो भृगो ॥ ११० ॥

अर्थ—हे परशुराम ऊर्ध्वभेदी तो ज्येष्ठ कहाताहै और जो बीचमें वेधकरै, वह मध्यम, और निशानेका पादवेधी जो हो वह कनिष्ठ कहाताहै ॥ ११० ॥

अथाऽनध्यायः ।

अष्टमी च ह्यमावास्या वर्जनीया चतु-

दर्शी। पूर्णिमार्द्धदिनं यावन्निषिद्धं सर्वकर्मसु॥ ११ ॥

अर्थ-अब अनध्यायोंका वर्णन करतेहैं, अष्टमी और अमावस और चौदस ये तिथि वर्जित हैं, पूरणवासी आधे दिनतक सब कामोंमें निषेध की है॥ ११॥

अकाले गर्जिते देवे दुर्दिनंचाथवा भवेत्
पूर्वकांडहतं लक्ष्यमनध्याये प्रचक्षते॥१२॥

अर्थ-विना समय बादल गर्जै वा बादलोंसे छाया हुआ आकाश हो, पहलाही बाण लक्ष्यपर न लगे तो धनुर्वेद विद्याका अनध्याय होता है॥ १२॥

अनूराधर्क्षमारभ्य षोडशर्क्षे दिवाकरः।
यावच्चरति तं कालमकालं हि प्रचक्षते॥१३॥

अर्थ-अनूराधानक्षत्रसे आरंभ होकर सोलह नक्षत्रोंपर सूर्य इतने रहै, उस समयको असमय कहते हैं अर्थात् वृश्चिकके राशिके सूर्यसे लेकर मार्गशीर्षके महीने ज्येष्ठतक धनुषका अभ्यास न करै, केवल आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, और आश्विन, कार्तिक इन पांचमासोंमेंही अभ्यास और पठनपाठन करै॥ १३॥

अरुणोदयवेलायां वारिदो यदि गर्जति।
तद्दिने स्यादनध्यायस्तमकालं प्रचक्षते॥१४

अर्थ-जिससमय प्रातःकाल लाल बादल हो सूर्य उदय होते समय यदि बादल गर्जै, उस दिन अनध्याय होताहै उसको असमय कहते हैं ॥ १४ ॥

श्रमं च कुर्वतस्तत्र भुजंगो दृश्यते यदि। अथवा भज्यते चापं यदैव श्रम-कर्मणि ॥ १५ ॥ त्रुट्यते वा गुणो यत्र प्रथमे बाणमोक्षणे । श्रमं तत्र न कुर्वीत शस्त्रे मतिमतां वरः ॥ १६ ॥

अर्थ-धनुष-अभ्यास करनेके आरम्भमें जो सर्प दीखै अथवा धनुष टूटजाय और पहिलेही बाण छोडते समय गुणा टूटजाय तो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ धनुर्द्धरको विचार करना चाहिये कि, वह धनुषका वा किसी शास्त्रका भी अभ्यास न करै ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ श्रमक्रिया ।

क्रियाकलापान्वक्ष्यामि श्रमसाध्याञ्छु-च्चिष्मताम् ॥ येषां विज्ञानमात्रेण सिद्धि-र्भवति नान्यथा ॥१७॥

अर्थ-अब श्रम क्रिया कहते हैं, पवित्रपुरुषोंके लिये धनुषकी क्रिया कहतेहैं, जो परिश्रमसे सिद्ध होसक्तीहै, जिनके जाननेमात्रसेही सिद्ध होजातीहै यह अन्यथा नहीं है ॥ १७ ॥

प्रथमंचापमारोप्य चूलिकांबधयेत्ततः।
स्थानकं तु ततः कृत्वा बाणोपरिकरं
न्यसेत् ॥ १८॥

अर्थ-प्रथम धनुषको आरोपण करके पीछे चूलिको बांधे, तत्पश्चात् स्थानक करके बाणपर हाथ रक्खे॥ १८॥

तोलनं धनुषश्चैव कर्तव्यं वामपाणिना ।
आदानं च ततः कृत्वा संधानं च ततः
परम् ॥१९॥

अर्थ-धनुषका तोलन बाँये हाथसे करना चाहिये, बोझ तोलकर पीछे उठावे, उसके उपरान्त बाण संधान करै ॥ १९॥

सकृदाकृष्टचापेन भूमिवेधं न कारयेत्।
नमस्कुर्याच्च मां विघ्नराजं गुरुधनुः
शरान् ॥ २० ॥

अर्थ-पहले चढ़ाये धनुषसे धरतीका वेध न करै और हे विश्वामित्र! शिवजी महाराज कहते हैं कि गणेशजीको और मुझको गुरुको धनुषको बाणोंको नमस्कार करै ॥ २० ॥

याचितव्या गुरोराज्ञा बाणस्याकर्षणं प्रति । प्राणवायुं प्रयत्नेन प्राणेन सह पूरयेत् ॥ २१ ॥ कुंभकेन स्थिरं कृत्वा हुङ्कारेण विसर्जयेत् । इत्यभ्यासक्रिया कार्या धन्विना सिद्धि मिच्छता ॥ २२ ॥

अर्थ– फिर गुरुसे बाण खैंचनेकी आज्ञा मांगे, प्राणवायु को जतनसे प्राणके साथ पूरक करै, पीछे कुम्भकसे वायु- को स्थिरकर हुंकारसे रेचक करै, सिद्धि चाहनेवाले धनुष- धारीको यदि सिद्धिचाहै तो इस अभ्यासकी क्रिया करनी चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

षण्मासात्सिध्यते मुष्टिः शराःसंवत्सरेण तु । नाराचास्तस्य सिध्यंति यस्य तुष्टो महेश्वरः ॥ २३ ॥

अर्थ–छःमहीनेमें मुट्ठी सिद्ध होतीहै और बाण एक व- र्षमें सिद्ध होतेहैं, नाराच उसके सिद्ध होतेहैं, जिसपर श्रीम- हादेवजी प्रसन्नहों ॥ २३ ॥

पुष्पवद्धारयेद्बाणं सर्पवत्पीडयेद्धनुः । धनवच्चिंतयेल्लक्ष्यं यदीच्छेत्सिद्धि मात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—यदि अपनी सिद्धिचाहै तो फूलकी नाईं बाण धारण करै, साँपकीनाईं धनुषको पीडनकरै, धनकी- नाईं लक्ष्यको चिंतनकरै ॥ २४ ॥

क्रियामिच्छन्ति चाचार्या दूरमिच्छन्ति भार्गवाः । राजानो दृढमिच्छन्ति लक्ष्य- मिच्छंति चेतरे ॥ २५ ॥

अर्थ—आचार्य तो क्रियाकी इच्छा करतेहैं और भृगुवंशी दूर बाणजाके पड़े यह इच्छा करतेहैं, राजा अंग दृढ वस्तु कटजाय ऐसी इच्छा करतेहैं और लोग लक्ष्य (निशाना) अच्छा लगे, इसकी इच्छा करतेहैं ॥ २५ ॥

जनानां रंजनं येन लक्ष्यपातात्प्रजायते । हीनेनापीषुणा तस्मात्प्रशस्तं लक्ष्यवे- धनम् ॥ २६ ॥

अर्थ—जिस लक्ष्यके मारनेसे मनुष्योंका चित प्रसन्नहो, तिससे छोटे बाणसेभी लक्ष्यका वींधना अच्छाहै छोटे बाणसे निशाना अच्छा विंधताहै यह बात सिद्ध हुई ॥ २६ ॥

अथ लक्ष्यास्खलन विधिः ।

विशाखस्थानकं हित्वा समसंधान मा- चरेत् । गोपुच्छमुखबाणेन सिंहकर्णेन मुष्टिना ॥ २७ ॥ आकर्षेत्कौशिकन्याये

न शिखाश्चालयेत्ततः । पूर्वापरौ समं कार्यौ समासौ निश्चलौ करौ ॥ २८ ॥ चक्षुषी स्पंदयेन्नैव दृष्टिं लक्ष्ये नियोजयेत् मुष्टिनाऽऽच्छादितं लक्ष्यं शरस्याग्रे नियोजयेत् ॥ २९ ॥ मनो दृष्टिगतं कृत्वा ततः काण्डं विसर्जयेत् ॥ स्खलत्येव कदाचिन्न लक्ष्ये योधो जितश्रमः ॥ ३० ॥

अर्थ—अब निशान न चूकनेकी विधि,विशाखस्थानको छोड़कर समसंधान करे, समसंधानके लक्षण पहिले कह आयेहैं, गोपुच्छमुख बाणसे और सिंहकर्ण मुष्टिसे, कौशिकन्यायसे खेंचे और शिखाकोभी न चलावे, पूर्व और पर समान करे, दोनों कंधे बराबर करे और दोनों हाथोंको हिलाने नदे,आँखोंको किंचित्भी न चलावे निगाहको निशानेपर जोड़े, मुट्ठीसे लक्ष्यको ढककर बाणके आगे करे, मनको दृष्टिसे करके अर्थात् जहाँ निशानेपर दृष्टिहो वहांही मनदेकर पीछे बाण छोडै, इस विधिसे जितश्रम योधा कभीभी निशानेसे नहीं चूकताहै, क्योंकि उसने श्रमसे लक्ष्यको जीतलियाहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ शीघ्रसंधानम् ।

आदानं चैव तूणीरात्संधानं कर्षणं तथा । क्षेपणं च त्वरायुक्तो बाणस्य कुरुते

तुयः ॥ ३१ ॥ नित्याभ्यासवशात्तस्य
शीघ्रसंधानता भवेत्।

अर्थ—अब शीघ्र संधान कहतेहैं, जो पुरुष माथेमेंसे बाण लेकर संधान करके कर्षण करै, फिर जल्दीही क्षेपणकरै वह ऐसे नित्यके अभ्याससे शीघ्र संधानता होजातीहै ॥

अथ दूरपातित्वम्।

मुष्ट्यापताकया बाणं स्त्रीचिह्नं दूरपातनम्।

अर्थ—पताका नाम मुष्टिसे स्त्रीचिह्नवाले बाणको फेंके तो दूरपडै ॥ ३२ ॥

अथ दृढभेदिता।

प्रत्यालीढे कृते स्थाने ह्यधः संधानमाचरेत्। दर्दुरस्थानमास्थाय ह्यूर्ध्वंधारणमाचरेत् ॥ ३३ ॥ स्कंधव्यायेन वज्रस्य ष्ट्यापुंमार्गणेनच। अत्यन्तसौष्ठवाद्बाह्वोर्जायते दृढभेदिता ॥ ३४ ॥

अर्थ— प्रत्यालीढस्थान किये पीछे अधःसंधान करै और दर्दुर स्थानसे स्थित होकर ऊर्ध्वसंधान करै स्कंधव्यायसे वज्रमुष्टि और पुरुष बाणसमसंधान करै, ऐसा कर

नेसे बहुत अच्छी दृढ भेदिता हाथोंसेही बाणोंकी होजाती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथहीनगतयः ।

सूचीमुखा मीनपुच्छा भ्रमरी च तृतीयका ॥ शराणां गतयस्तिस्रः प्रशस्ताः कथिता बुधैः ३५ ॥

अर्थ–अब हीन मतियोंका वर्णन करतेहैं । सूचीमुख १ मीनपुच्छ २ तीसरीभ्रमरी ३ ये बाणोंकी तीन चाल श्रेष्ठ कहीहैं ॥ ३५ ॥

सूची मुखा गतिस्तस्य सायकस्य प्रजापते । पत्रं विलोकितं यस्य ह्यथवा हीन पत्रकम् ३६ ॥

अर्थ–जिस बाणके पर देखेहों, अर्थात् परवाला हो, अथवा पररहित हो, उस बाणकी सूचीमुख चाल होजातीहै ॥ ३६ ॥

कर्करीतन्तु चापेनयैः कृष्टो हीनमुष्टिना । मत्स्यपुच्छा गतिस्तस्य सायकस्य प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥

अर्थ–जिस बाणको कठिन धनुष और पूर्वोक्त हीन मुष्टिसे खैंचाजाय उसकी मत्स्य पुच्छा गति श्रीमहादेवजी महाराजने कहीहै ॥ ३७ ॥

भ्रमरी कथिता ह्येषा शिवेन श्रमकर्मणि ।
ऋजुत्वेन विना याति क्षेप्यमाणस्तु साय-
कः ॥ ३८ ॥

अर्थ-फेंका हुआ जो बाण सीधापनके विनाही जाय, इसको शिवजी महाराजने श्रमकर्ममें भ्रमरी कहाहै पूर्वोक्त तिर्यग्गत लक्ष्य वेधनके लिये श्रेष्ठ हैं ॥ ३८ ॥

अथ बाणानां लक्ष्यस्खलन गतयः ।
वामगा दक्षिणा चैव ऊर्ध्वगाऽधोगमा
तथा । चतस्रो गतयः प्रोक्ता बाणस्खलन
हेतवः ॥ ३९ ॥

अर्थ-बांईओर जानेवाली, दाहिनीओर जानेवाली, ऊपरको और वैसेही नीचेको गति होजाय, ये चार गति श्रीमहादेवजीने बाणोंके स्खलनके कारण कहीहैं ॥ ३९ ॥

अथैतासां क्रमेणोदाहरणानि ॥

कम्पते गुणमुष्टिस्तु मार्गणस्य तु पृष्ठतः॥
संमुखी स्याद्धनुर्मुष्टिस्तदा वामे गति-
र्भवेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-गुणाकी मुष्टि जो कि बाणकी पीठपरसे काँपे, और धनुषकी मुष्टि सामने होय तब बाण सीधा जाके

नहींलगे, किंतु बांईं ओरको उसकी चालहोजातीहै, इसलिये गुणाकी मुष्टिको काँपने न देवे॥ ४० ॥

ग्रहणं शिथिलं यस्य ऋजुत्वेन विवर्जितम् । पार्श्वंतु दक्षिणं याति सायकस्य न संशयः ॥ ४१ ॥

अर्थ–जिस बाणका पकड़ना ढीलाहो और सीधापन से भी रहित हो वह दाहिनी ओर चलाजाताहै, इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्वं भवेच्चापमुष्टिगुणमुष्टिरधो भवेत् । समुक्तो मार्गणो लक्ष्यादूर्ध्वंयातिनसंशयः ॥ ४२ ॥

अर्थ–धनुषकी मुट्ठी ऊपर को हो और गुणाकी मुष्टि निशानेसे नीचे को हो तो वह शर लक्ष्यवेधको छोड़कर ऊपर को चलाजाता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ४२ ॥

मोक्षणे चैव बाणस्य चापमुष्टिरधो भवेत् । गुणमुष्टिर्भवेदूर्ध्वं तदाधोगामिनी गतिः ॥४३॥

अर्थ–बाणके छोड़नेपर धनुषकी मुष्टि यदि निशानेसे नीचे हो और गुणाकी मुष्टि ऊपर हो, तब बाणकी गति

नीचेको होजातीहै. सिद्धांत यह है कि, चापमुष्टि और गुणामुष्टिसे लक्ष्यको ढकलेना चाहिये तब लक्ष्यभेद होताहै अन्यथा नहीं होता ॥ ४३ ॥

अथ शुद्धगतयः।

लक्ष्यबाणाग्रदृष्टीनां संगतिस्तु यदा भवेत्। तदानीं मुंचितो बाणो लक्ष्यान्न-स्खलति ध्रुवम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–अब शुद्ध गतिका वर्णन ऐसा है कि, लक्ष्य और बाणका अग्रभाग तथा ये तीनों एकही होजाँय, तब छोड़ाहुआबाण निशानेसे नहीं चूकता ॥ ४४ ॥

निर्दोषः शब्दहीनश्च सममुष्टिद्वयोज्झितः। भिनत्ति दृढवेध्यानि सायको नास्ति संशयः ॥ ४५ ॥

अर्थ–दोषरहित और शब्दसे हीन गुणा और धनुष इनकी समान मुष्टिसे छोड़ाहुआ बाण कठिन वस्तुओंको विदारण करदेताहै, इसमें संदेह नहीं ॥ ४५ ॥

स्वाकृष्टस्तेजितो यश्च सुशुद्धो गाढ-मुष्टितः। नरनागाश्च कायेषु न तिष्ठति स मार्गणः ॥ ४६ ॥

अर्थ–सुंदर खैंचाहुआ तेज कियाहुआ जो अच्छा

स्वच्छ पक्ष आदि बँधाहो वह बाण गाढ़ी मुष्टिसे छोड़ाहुआ, मनुष्य हाथी घोडोंके शरीरोंमें नहीं ठहरता अर्थात् पार होजाताहै ॥ ४६ ॥

यस्य तृणसमा बाणा यस्येंधनसमं धनुः । यस्य प्राणसमा मौर्वी स धन्वी धन्विनां वरः ॥ ४७ ॥

अर्थ–जिसके तृणकेसमान बाण, और जिसके ईंधनके तुल्य धनुष और प्राणके समान मौर्वी (प्रत्यंचा) हो वह धनुषधारी धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥

अथ दृढ चतुष्कम् ।

अयश्चर्मघटश्चैव मृत्पिडश्च चतुष्टयम् । योभनत्ति न तस्येषुर्वज्रेणापि विदार्यते ॥४८॥

अर्थ–अब दृढ़ चतुष्क कहतेहैं, लोह, चमड़ा, घड़ा, मिट्टीके पिण्ड, इन चारोंको जो बाण भेदनकरै, उसका बाण वज्रसेभी न कटे ॥ ४८ ॥

"सार्द्धाङ्गुलप्रमाणेन लोहपत्राणि कारयत् । तानि भित्त्वैकबाणेन दृढघाती भवेन्नरः ॥

अर्थ–डेढ अंगुलके मान चौड़े लोहेके पत्र करावे, उनको एक बाणसे जो वेध दे वह दृढ़घाती मनुष्य होताहै " ॥

चतुर्विंशतिचर्माणि यो भिनत्तीषुणा

नरः। तस्य बाणो गजेन्द्रस्य कायं
निर्भिद्य गच्छति ॥ ४९ ॥

अर्थ-जो मनुष्य एक बाणसे २४ चौवीस चमडोंको वींधदे, उसका बाण वडे भारी हाथी के शरीरको भी भेदनकर चला जायगा ॥ ४९ ॥

भ्राम्यं जले घटो वेध्यश्चक्रे मृत्पिंडकं तथा ॥
भ्रमंतं वेधयेद्यो हि दृढ़भेदी स उच्यते ॥५०॥

अर्थ-जलमें घुमाकर घड़ा वींधना चाहिये, और वैसेही कुम्हारके चाकके मट्टीके घूमतेहुए पिण्डेको, जो भ्रमण करतीहुई वस्तुको वेधे वह दृढ़भेदी कहाताहै ॥ ५० ॥

अयस्तु काकतुण्डेन चर्म चारामुखेन
हि। मृत्पिण्डं च घटं चैव विध्येत्सूची-
मुखेन वै ॥ ५१ ॥

लोहेकी वस्तुको काकतुण्डसे, ढालको आरामुखसे, और मट्टीके डलेको और घडेको सूचीमुख बाणसे वेधे ॥५१॥

अथ चित्रविधिः।

बाणभंगकरावर्तकाष्ठच्छेदनमेव च ।
बिंदुकं गोलकयुगं यो वेत्ति स जयी भवे-
त् ॥ ५२ ॥

बाणके तोड़नेकी विधि और काष्ठच्छेदन, तथा बिंदी (चांदमारी) और दो गोलोंको जो बींधना जाने वह परसेनाको जितनेवाला होताहै ॥ ५२ ॥

लक्ष्यस्थाने धृतं काण्डं सन्मुखं छेदयेत्ततः ॥ किंचिन्मुष्टिं विधाय स्वां तिर्यग्द्विफलकेषुणा ॥ ५३ ॥ सन्मुखं बाणमायान्तं तिर्यग्बाणं न संचरेत् । प्राप्तं शरेण यश्छिद्याद्बाणच्छेदी सउच्यते ॥ ५४ ॥

निशानेके स्थानमें धारण कियेहुये बाणको सामने आते २ ही मार्ग में काट दे, कुछ अपनी मुष्टिको करके तिरछा हो, दोफलवाले बाणसे वा अर्धचन्द्रसे शत्रुके शिरको मध्यसे काटदे, सामने आते हुये बाणको तिरछा बाण न चलावे, किंतु आप तिरछा होजाय बाणसे बाणको जो काटदे, वह बाण छेदी कहाता है ॥५३॥ ५४ ॥

अब काष्ठच्छेदनम् ।

काष्ठे श्वकेशं संयम्य तत्र बध्वा वराटिकाम् । हस्तेन भ्राम्यमाणं च यो हन्ति स धनुर्धरः ॥ ५५ ॥ लक्ष्यस्थाने न्यसेत्काष्ठं सार्द्रं गोपुच्छसन्निभम् । यश्छि-

द्यात्तत्क्षुरप्रेण काष्ठच्छेदी स जायते ॥ ५६ ॥

अर्थ-अब काष्ठ छेदनको कहतेहैं, लकडीको घोडेका बाल बांधकर उसमें कौडी बांधकर भ्रमतीहुईको जो मारदे वह धनुषधारी है, निशानेकी जगह गीली लकडीको काली करके रक्खे, जो उसको क्षुरप्रबाणसे छेदन करदे वह सबकाष्ठोंको काटदेगा और (काष्ठच्छेदी) की पदवी मिलेगी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

लक्ष्ये बिंदुं न्यसेच्छुभ्रंशुभ्रबंधूकपुष्पवत् ।
हन्तितंबिन्दुकं यस्तु चित्रयोधा स उच्यते५७॥

अर्थ-लक्ष्यकी जगह सपेद बिंदी शुक्लकुन्दके फूलकी सदृश रक्खे उस बिन्दुको जो वेधदे वह (चित्रयोधा) कहताहै ॥ ५७॥

काष्ठगोलयुगं क्षिप्रं दूरमूर्ध्वं पुरास्थितैः । असम्प्राप्तं शरं पृष्ठे तद्गोपुच्छमुखेन हि ॥ ५८ ॥ यो हन्ति शरयुग्मेन शीघ्रसंधानयोगतः ॥ स स्याद्धनुर्भृतां श्रेष्ठः पूजितः सर्वपार्थिवैः ॥ ५९ ॥

अर्थ-दो काष्ठके गोलोंको शीघ्रतासे ऊपरको आकाशमें फेंकदे वे दोनों धरतीपर गिरने न पावे उनकी पीठको गोपुच्छमुखसे वेध देदो बाणोंसे शीघ्रसंधान के योगसे

वह धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ है और सब राजाओंसे पूजित है, अर्थात् सब राजाओंको उसका सत्कार करना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अथ धावल्लक्ष्यम् ।

रथस्थेन गजस्थेन हयस्थेन च पत्तिना ।
धावता वै श्रमः कार्यो लक्ष्यं हन्तुं सनिश्चितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—रथी वा गजी अथवा सवार वा पैदलको भागतेहुए परलक्ष्य मारनेका श्रम करना चाहिये ॥ ६० ॥

अथ विधिः ।

वामादायाति यल्लक्ष्यं दक्षिणांहि प्रधावति।
तच्छिन्द्याच्चापमाकृष्य सव्येनैव च पाणिना ॥ ६१ ॥ तथैव दक्षिणायान्तु विध्येद्बाणाद्धनुर्धरः॥आलीढक्रममारोप्य त्वराहन्याच्च तं नरः॥ ६२ ॥ वायोरपि बलं दृष्ट्वा वामदक्षिणवाहतः। लक्ष्यं स साधयेदेवं गाधिपुत्र नृपात्मज ॥ ६३ ॥ वायुपृष्ठे दक्षिणे च वहन्सूचयते बलम् ॥ सम्मुखीनश्च वामश्च भटानां भङ्गसूचकः ६४

अर्थ—अब भागते हुएको मारनेकी विधि कहतेहैं, जो निशाना बायें हाथकी ओरसे आताहुआ दाहिनी ओर भागता जाता हो, उसको बाँयें खेंचकर बाण हाथसे मारै, वैसे-ही दक्षिणकी ओरसे आताहो उसको धनुषधारी मनुष्य आ-लीढक्रम करके मारै, आलीढक्रम पहले कह आये, बांईओ रसें चलताहुआ वा दाहिनी ओरसे वायु चलताहो तो उस-का बलभी देखले, यदि बांई ओरसे चलता हो तो धनुष-को दाहिनी ओर झुकादे और दाहिना वायु होतो बांई ओर बाण छोड़दे. हे गाधिके पुत्र ! हे राजाके पुत्र ! ऐसे निशाना साधन करै, जिसके पीठ पाछेका वा दाहिनीओरका वायु चलताहो, वही जीतता है और जिसके सामनेका व बांई ओर पवन चलताहै वह हारजाताहै, जोधाओंका भंग सूचकहै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ शब्दवेधित्वम् ।

लक्ष्यस्थाने न्यसेत्कांस्यपात्रं हस्तद्वया-न्तरे । ताडयेच्छर्कराभिस्तच्छब्दः सं-जायते यदा ॥६५॥ यत्र चैवोद्यते शब्दस्तं सम्यक्तत्र चिंतयेत । कर्णेन्द्रियमनो-योगाल्लक्ष्यं निश्चयतां नयेत ॥ ६६ ॥ पुनः शर्करया तच्च ताडयेच्छब्दहेतवे । पुन-

निश्चयतां नेयं शब्दस्थानानुसारतः॥६७॥
ततः किंचित्कृतं दूरं नित्यं नित्यं विधा-
नतः। लक्ष्यं समभ्यसेध्वांते शब्दवेधनहे-
तवे॥६८॥ ततो बाणेन हन्यात्तदवधानेन
तीक्ष्णधीः। एतच्च दुष्करं कर्म भाग्ये
कस्यापि सिध्यति॥ ६९॥

अर्थ—निशानेके स्थानमें कांसेका पात्र दो हाथ परे रक्खे, फिर उसको बालूरतसे ताड़नकरै, तब शब्द उत्पन्न हो जहांसे शब्द उत्पन्न हो उसको भली भाँति चिंतन करै कान इन्द्रिय और मनके योगसे निशानेको निश्चय करै फिर उसको शब्द सुनके हेतु शब्दस्थानके अनुसार ताड़न करै, जब दो हाथ अंतरसे शब्द सुननेका अभ्यास होजाय, तब कुछ उस कांस्यपात्रको दूर धरे. नित्य बढ़ाता जाय, ऐसे शब्दवेधनकेलिये निशानेका अभ्यास अँधेरेमें करै, फिर बाणसे निशानेको सावधानचित्तसे हननकरे यह दुष्कर कर्म किसीके भाग्यमें हो उसको सिद्ध होताहै॥ ६५॥६६॥ ॥ ६७॥ ६८॥ ६९॥

अथ प्रत्यागमनम्।

खगं बाणन्तु राजेन्द्र प्रक्षिपेद्वायु सम्मु-

खे। रंजकस्य च नालाभिरतो ह्यागमनं भवेत् ॥ ७० ॥

अर्थ-हेराजेन्द्र विश्वामित्र! खगनाम बाणको वायुके सामने फेंके जिसमें रंजककी नलिका लगीहो, इससे उस बाणका फिर आगमन होजाताहै ॥ ७० ॥

अथास्त्रविधिः।

एवं श्रमविधं कुर्याद्यावत्सिद्धिः प्रजायते। श्रमे सिद्धे च वर्षासु नैव ग्राह्यं धनुष्करे ॥७१॥ पूर्वाभ्यासस्य शास्त्राणामविस्मरणहेतवे। मासद्वयं श्रमं कुर्यात्प्रतिवर्षं शरदृतौ ॥ ७२ ॥ जाते वाऽश्वयुजे मासे नवमी देवतादिने। पूजयेदीश्वरीं चण्डीं गुरु शास्त्राणि वाजिनः ॥ ७३ ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्वा कुमारीर्भोजयेत्ततः। देव्यै पशुबलिंदद्याद्धृतो वादित्रमंगलैः ॥ ७४ ॥ ततस्तु साधयेन्मंत्रान्वेदोक्तान्वागमो दितान्। अस्त्राणां कर्मसिद्ध्यर्थं जपहोमविधानतः ॥ ७५ ॥

अर्थ-ऐसे श्रमविधि करै, जबतक सिद्धिहो श्रम सिद्धि-

हुए पीछे वर्षामें धनुषको करमें धारण न करै पूर्व अभ्यास किये हुए शास्त्रोंके न भूलनेके कारण दो महीना परिश्रम करै, प्रत्येक वर्षके शरदृतुमें अथवा आश्विन महीनेमें शुक्लपक्षकी ९ नवमी देवीके दिन चण्डी ईश्वरी और गुरु तथा हथियार और घोड़ोंकी राजा वा अभ्यासी पूजा करै ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर पीछे क्वाँरी कन्याओंको जिमावे, देवीके लिये पशूकी बलिदे. बाजों और मंगलोंके साथ पीछे वेदोक्त हों वा शास्त्रोक्त हों अस्त्रोंकी कर्म सिद्धि के लिये जप और होमकी विधिसे मंत्रोंको साधन करैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

ब्राह्मं नारायणं शैवमैन्द्रं वायव्यवारुणे।
आग्नेयं चापरास्त्राणि गुरुदत्तानि साधयेत्
॥ ७६ ॥ मनोवाक्कर्मभिर्भाव्यं लब्धा-
स्त्रेण शुचिष्मता। अपात्रमसमर्थं च दह-
न्त्यस्त्राणि पूरुषम् ॥७७॥ प्रयोगं चोप-
संहारं यो वेत्ति स धनुर्द्धरः। सामान्ये
कर्मणि प्राज्ञो नैवास्त्राणि प्रयोजयेत्॥७८॥

अर्थ—ब्राह्य, नारायण, शैव, ऐन्द्र, वायव्य, वारुण, आग्नेय और गुरु के दियेहुये अस्त्रों को साधन करै, पवित्र पुरुष मन, वाणी, कर्मसे अनुभव करै अस्त्रोंको पाकर, अस्त्रोंका

प्रयोग और संहार जो जाने वह धनुर्धरहै, सामान्य कामके-लिये बुद्धिमान् अस्त्रोंका प्रयोग न करै ॥७६॥७७॥७८॥

अथास्त्राणि प्रवक्ष्यामि सावधानोऽवधारय । ब्रह्मास्त्रं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं ब्रह्मदंडकम् ॥ ७९ ॥ ब्रह्मशिरस्तृतीयं च तुर्यं पाशुपतं मतम् । वायव्यं पञ्चमं प्रोक्तमाग्नेयं षष्ठकं स्मृतम् ॥ ८० ॥ नारसिंहं सप्तमञ्च तेषां भेदाह्यनन्तकाः । ससंहारं सुविज्ञेयं शृणु गाधे यथातथम् ॥ ८१ ॥ वेदमात्रा सर्वं शस्त्रं गृह्यते दीप्यतेऽथवा । तत्प्रयोगं शृणु प्राज्ञ ब्रह्मास्त्रं प्रथमं शृणु ॥ ८२ ॥

अर्थ–हे विश्वामित्र ! अब तू सावधान होकर धारणकर अब मैं अस्त्रोंको कहूंगा पहिला ब्रह्मास्त्र कहा, दूसरा ब्रह्मदण्ड, तीसरा ब्रह्मशिर, चौथा पाशुपतास्त्र, पांचवां वायव्यास्त्र, छठा आग्नेयास्त्र, सातवाँ नारसिंह, इनके अनंत भेदहैं, इनको संहारके साथ जानना योग्य है. हे गाधिवंशज ! तू जैसाहै वैसा सुन,ये सब वेदमातागायत्रीमंत्रसे ग्रहण करना अथवा दीप्यमान करना. हे प्राज्ञ ! इनका प्रयोग सुन इनमेंसे पहिला ब्रह्मास्त्र सुन ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथास्त्राणि ।

दादिदन्ताश्च सावित्रीं विपरीतां जपेत्सुधीः।जप्तापूर्वां निखर्वंचाभिमंत्र्य विधिवच्छरम्॥८३॥क्षिपेच्छत्रुषु सहसा नश्यंति सर्वजातयः । बाला वृद्धाश्च गर्भस्था येच योद्धुं समागताः ॥ ८४ ॥ सर्वे ते नाशमायान्ति मम चैव प्रसादतः । यथातथं दादिदन्तं जपेत्संहारसिद्धये ॥ ८५ ॥

अर्थ—अब अस्त्रविद्या कहतेहैं, 'द' को आदि ले 'द' के अन्ततक्क सावित्रीको विपरीत जपै, पहिले एक निखर्व विधिसे जपकर पुनः बाणको मंत्रितकर शीघ्र शत्रुओंपर फेंके, सब जाति नष्ट हों, बालक वृद्ध गर्भस्थ और जो कोई युद्धकरनेको आये हों वे सब नाशको प्राप्तहों, मेरी कृपासे और संहारकी सिद्धिको 'द' से आदि ले 'द' के अन्ततक जपै८५

ब्रह्मदण्डं प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुच्चरेत् । ततः प्रचोदयाज्ञेयं ततो नो यो धियः क्रमात् ॥ ८६ ॥ ततो धीमहि देवस्य ततो भर्गो वरेणियम् । सवितुस्तच्च योक्तव्यममुकशत्रुं तथैव च ॥ ८७ ॥ ततो

हनर हुंफट् जप्त्वा पूर्वं द्विलक्षकम्। अभिमंत्र्य शरं तद्वत्प्राक्षिपेच्छत्रुषु स्फुटम्॥ ॥ ८८॥ नश्यन्ति शत्रवः सर्वे यमतुल्या अपि ध्रुवम्। एतदेव विपर्यस्तं जपेत्संहारसिद्धये॥ ८९॥

अर्थ-ब्रह्मदण्ड कहतेहैं पाहिले प्रणव उच्चारण कर, पीछे प्रचोदयात् पीछे नो योधियो क्रमसे पीछे धीमहि देवस्य, पीछे भर्गो वरेणियम्, पीछे सवितुः जोड़कर(अमुकशत्रु) को वैसेही जोड़े पीछे हनहन हुंफट् जपकर दो लाख बाणको मंत्रितकर शत्रुओंपर फेंके, सारे शत्रु यदि यमराजके तुल्य हो तोभी नाशहों इसीको संहारकी सिद्धकेलिये उलटा जपै॥ ८६॥ ८७॥ ८८॥ ८९॥

ब्रह्मशिरः प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुच्चरेत्। धियो यो नः प्रचोदयात्।भर्गो देवस्य धीमहि ॥ ९० ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं शत्रून्मे हनहनेति च। हुंफट् चैव प्रयोक्तव्यं क्षिपेद्ब्रह्मशिरस्ततः ॥ ९१ ॥ पुरश्चर्यां पुरः कृत्वा त्रिलक्ष्यं नियतः शुचिः। नश्यन्ति सर्वे रिपवः सर्वे देवाः सुरा अपि॥ ९२॥

इदमेव प्रयोक्तव्यं विपर्यस्तं विकर्षणे ॥ ९३ ॥

अर्थ—ब्रह्मशिर अस्त्रको कहतेहैं, पहिले प्रणवउच्चारण करै पीछे तत्सवितुर्वरेण्यं शत्रून्मे हन २ हुं फट् जोडना चाहिये पीछे ब्रह्म शिरको फेंके, तीनलाखका पुरश्चरण करके पवित्र होके देवता वा असुर कोई शत्रु हो सब नाशको प्राप्तहों और इसीको संहारके निमित्त उलटा जपै ॥ ९३ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि चास्त्रं पाशुपतं तव । यस्य विज्ञानमात्रेण नश्यन्ति सर्वशत्रवः ॥ ९४ ॥ दादिदन्तां च सावित्रीं प्रोच्य प्रणवमेव च । श्लीं पशुं हुंफट् अमुकशत्रून् हनहन हुंफट् ॥ ९५ ॥ जप्त्वा पूर्वं द्विलक्षं च ततः पाशुपतं क्षिपेत् ॥ पुनस्तदेव व्यस्तं स्यात्संहारे तां नियोजयेत् ॥ एतत्पाशुपतं चास्त्रं सर्वशस्त्रनिवारणम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—इससे परे पाशुपतास्त्र तुम्हारेको कहतेहैं, जिसके जाननेसे सब शत्रु नष्ट होजाय, 'द' को आदि ले 'द' के अंततक प्रणव कहकर श्लींपशुं हुंफट्, फलाने शत्रुको (हुंफट) ऐसा दो लाख मंत्र जपकर पीछे पाशुपतास्त्र फेंके

फिर संहारके लिये (व्यस्त) उलटा जपै, यह पाशुपतास्त्र सब शत्रुओंका निवारण करनेवालाहै ॥१४॥१५॥१६॥

वच्मि वायव्यमस्त्रंते येन नश्यन्ति शत्रवः। ओंवायव्यया वायव्ययान्योवा यया वा तथा। अमुक शत्रून् हन २ हुंफट् चैव प्रकीर्तयेत्। पूर्वमेव तथा जप्त्वा नियुतद्वितयं तथा॥ १७॥ पुनः संहाररूपेण संहारं च प्रकल्पयेत्॥ अस्त्रं वायव्यकं नाम देवनामपि वारणम्॥ १८॥

अर्थ–तेरेको वायव्य अस्त्र कहताहूं,जिससे शत्रु नाशहों, "ओंवायव्यय" आदिके पहिले दो लाख जपकर फिर संहार रूपसे संहार करै, यह वायव्यास्त्र देवताओंकोभी हटादेताहै॥१७॥१८॥

आग्नेयं संप्रवक्ष्यामि यतः परभयं दहेत्॥ ओंअग्निस्त्यताहदुभूंचाशिवंवना श्चाविणि च हगादशरूपनःसदवेति ततःक्र मात् हादातितोयातिराम तथा मसोहिवावा न॥ १९॥ सुसेदवेदया च वदेत्। अमुका दींस्ततो वदेत्। पूर्वोक्तां च पुरश्चर्यां कृत्वा

शस्त्रेऽभियोजयेत् । इमं मंत्रं पुनर्व्यस्तं संहारे चैव योजयेत् ॥ १०० ॥

अर्थ-अब आग्नेयास्त्र कहतेहैं, जिससे शत्रुका भय दूरहो "ॐअग्नि" यहांसे लेकर सुसेदवेदया यहांतक मन्त्र पढ़ शत्रुका नाम जोड़े, दोलाख मंत्र जपै फिर शस्त्रपर योजना करै वा अस्त्र चलावे फिर संहारके लिये उलटा जपै ॥ ९९ ॥ १०० ॥

ॐवज्रनखवज्रदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुंफट् । पूर्वं जप्त्वा च लक्षं हि नरसिंहं च योजयेत् । सिंहरूपास्ततो बाणाः पतंति शात्रवे वने ॥ १ ॥ पूर्वोक्तेन प्रकारेण संहारं च प्रकल्पयेत् । संक्षेपतो महाभाग तवोक्तानि महामते ॥ २ ॥ भेदास्त्वेषां शिवेनैव ह्यनन्ताःपरिकीर्तिताः ।

इत्यस्त्रप्रकरणम् ।

अर्थ-पूर्वोक्तमंत्रको एकलाख जपकर श्रीनृसिंहजी महाराजका ध्यानकर योजना करै, पीछे बाण सिंहरूप हो शत्रुरूपी वनमें पड़कर उनको खाजातेहैं पूर्वोक्तप्रकारसे संहारकरै, हेमहाभाग ! मैंने तेरे आगे संक्षेपसे अस्त्र कहे, इनके भेद तो श्रीशिवजी महाराजने परशुरामजीके प्राति अंनत कहेहैं । १ । २ ।

इत्यस्त्रप्रकरणं समाप्तम् ।

हस्तार्के लांगली कन्दो गृहीतस्तस्यले-
पतः । शूरस्यापि रणे पुंसो दर्पं हरति का-
तरः ॥ ३ ॥

अर्थ—हस्त नक्षत्रमें रविवारको जलपीपलका कन्दले-कर लेप करनेसे कायर पुरुषभी शूरवीरके अभिमानको दूर करदेता है ॥ ३ ॥

गृहीत्वा योगनक्षत्रैरपामार्गस्य मूलकम् ॥
लेपमात्रेण वीराणां सर्वशस्त्र निवारणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—पुष्य रविवार सिद्धयोगमें ऊँगा, जिसे चिरचिटा औ ताराभी कहतेहैं उसकी जड़ लेकर रखले जिस दिन किसीसे युद्धका काम पड़े, उसदिन शरीरके लेप करै तो वीरोंके सर्व शस्त्र न लगें ॥ ४ ॥

अधः पुष्पी शंखपुष्पी लज्जालुर्गिरिक-
र्णिका । नलिनी सहदेवी च पत्रमौंजा-
र्कयोस्तथा ॥ ५ ॥ विष्णुक्रान्ता च सर्वा
सां जटा ग्राह्या रवेर्दिने । बध्वा भुजे विले-
पाद्वा काये शस्त्रापवारकाः ॥ ६ ॥ सर्प-
व्याघ्रादिसत्वानां भूतादीनां न जायते ।

भीतिस्तस्य स्थिता यस्य मातरोऽष्टौ शरीरके ॥ ७ ॥

अर्थ–अधःपुष्पी जिसको औंधाहूली कहतेहैं, शंखाहूली, छुईमुई, वनमोगरा, कमोदिनी, सहदेई मूंजका और आकका पत्र, विष्णुक्रांता इन सबोंकी जड़ रविवारको ग्रहणकरके हाथोंके बाँधे, वा शरीरके लेपन करै तो सब शस्त्र दूरहों, साँप बाघ आदि हिंस्रजीवोंकी बाधा न हो और आठ मातृदेवियोंसेभी रक्षा हो ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

गृहीतं हस्तनक्षत्रे चूर्णं छुच्छुन्दरीभवम् । तत्प्रभावाद्गजः पुंसः सन्मुखं नेति निश्चितम् ॥८॥हरिमांसं गृहीत्वा च मार्गेऽश्वानां क्षिपेद्भुवि । तेन मार्गेण तेचाश्वा नायांति ताडनेन वै ॥ ९ ॥

अर्थ–हस्त नक्षत्रमें छुच्छुंदरी अर्थात् (छुणछुणियां) को चूराले, उसके प्रभावसे पुरुषके सामने हाथी नहीं आवे, यह निश्चय किया हुआ है, शेरका मांसलेकर जहाँ घोड़ोंका मार्ग हो, वहाँ पृथ्वीपर पटक दे तो उस मार्गसे वे घोड़े कोड़े मारनेसेभी नहीं आते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

छुच्छुन्दरी श्रीफलपुष्पचूर्णैरालिप्तगात्रस्य

नरस्य दूरात् ॥ आघ्राय गन्धाद्द्विरदोऽतिम-
त्तो मदं त्यजेत्केसरिणो यथोग्रम् ॥ ११० ॥

अर्थ—छुच्छुन्दर और नारियलके पुष्पका चूरा शरीरके लपेटे हुये, मनुष्यके शरीरकी गंधको सूँघकर मतवाला हाथीभी मदको छोड़ देता है जैसे शेरके शरीरेक गंधको सूँघ कर छोड़ताहै ॥ ११० ॥

श्वेताद्रिकर्णिका मूलं पाणिस्थं वारयेद्ग-
जम् । श्वेतकंटारिकामूलं व्याघ्रादीनां
भयं हरेत् ॥ ११ ॥ पुष्यार्कोत्पाटिते मूले
पाठाया मुखसंस्थिते । देहं स्फुटति नो
तीक्ष्णमंडलाग्रै रणे नृणाम् ॥ १२ ॥ गंधा-
र्या उत्तरं मूलं मुखस्थं सन्मुखागतम् ।
शस्त्रौघं वारयेत्तत्र पुष्यार्के विधिनोद्धृ-
तम् ॥ १३ ॥ विधिरुपवासः ।

शुभ्रायाः शरपुङ्खा या जटानीलीजटा-
थवा । भुजे शिरसि वक्रे वा स्थिता
शस्त्रनिवारिका ॥ १४ ॥ भूपा हि चोर-
भीतिघ्नी गृहीता पुष्यभास्करे ।

अर्थ-सफेद विष्णुक्रान्ताकी जड़ हाथमें रखनेसे हाथीको दूर करदेतीहै, सफेद कटहलीकी जड़ व्याघ्रादिकोंके भयको हरतीहै, पुष्यरविवारको पाठरकी जड उखाड़कर मुखमें रक्खे तो देह नहीं फटै, तीव्र तल्वार वा चक्रधारासे, गांधारीके उपारकी जड़ मुखमें होय तो सन्मुख आयेहुये शस्त्रोंके समूहको हटादेतीहै । विधिसे उपारीहुईहो, उसको उपवासकरिके लावे, सफेद झोझुरूकी जड़ हो अथवा नीलीकी जटाको, हाथ शिर मुखमें रखनेसे सब शस्त्रोंका निवारण करतीहै- राजा, चोर, साँपके डरका नाश करतीहै पुष्यार्कमें ग्रहण कीहुई हो ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ संग्रामविधिः ।

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समा-
चरेत् । सर्पमुद्रा कृता येन तस्य सिद्धि-
र्न संशयः ॥ १५ ॥

अर्थ-अब संग्राम करनेकी विधि लिखतेहैं, आदिमें शत्रुकी सेनाके सन्मुख खड़ा होकर मुद्राकरै, पीछे युद्धका आरम्भ करे, जिसने पहिले सर्पमुद्रा करीहो उसकी सिद्धि हो इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥

रुद्रं ध्यात्वा मन्त्रं जपेत् ।

ओं नमःपरमात्मने सर्वशक्तिमते विरूपा-

क्षाय भालनेत्राय रं हुं फट् स्वाहा। ततो हैमवतीं ध्यात्वा प्रणम्य युद्धमारभेत्॥ ॐ ह्रीं श्रीं हैमवतीश्वरी ह्रीं स्वाहा॥ ॐ ह्रीं वज्रयोगिन्यै स्वाहा॥ सिंहासनस्थां रुद्राणीं ध्यायेत्॥ १६॥

अर्थ—रुद्रका ध्यान करिके मंत्र जपे, जो पहिले लिख आयेहैं. पीछे हैमवती भगवतीका ध्यानकर प्रणामकर युद्ध का आरम्भ करै, हैमवती मंत्र उच्चारणकरिके, फिर वज्र योगिनीका ध्यान करिके सिंहपर चढ़ीहुई रुद्राणीको ध्यावै॥ १६॥

अपूर्णे शत्रुसामग्री पूर्णे वैरबलं तथा।
कुरुते पूर्णसत्वस्थो जयत्येको वसुंधराम्॥ १७॥

अर्थ—अपूर्ण स्वरमें शत्रुकी सामग्री हो और पूर्णमें अपनी सेना तत्त्वसे पूर्ण करै. स्थित हो ऐसा एकभी योधा सारी वसुधाको जीते॥ १७॥

पृष्ठे दक्षे योगिनी राहुयुक्ता यस्यैकोयं शत्रुलक्षं निहन्ति॥ अर्कः पृष्ठे दक्षिणे यस्य गाधे चन्द्रो वामे सन्मुखे वै निशा-

याम् ॥ १८ ॥ वायुं पृष्ठे दक्षिणे यो विद-
ध्याद्योधा शत्रून्नाशयेत्तत्क्षणेन ॥ १९ ॥

अर्थ-जिसके पीछे और दाहिने राहुसहित योगिनी हो वह अकेला लाख शत्रुओंको मारता है. हे विश्वामित्र! और ऐसेही सूर्य पीछे वा दाहिने हो और रातमें चन्द्रमा सामने अथवा बाँयें हो और वायुको पीछे वा दाहिने जो करै. वह योधा उस क्षणमें तत्काल शत्रुओंको नाशकरै ॥ १८ ॥ १९ ॥

या नाडी वहते चाङ्गे तस्यामेवाधिदे-
वता । सन्मुखेपि दिशा तेषां सर्वकार्यफ-
लप्रदा ॥ १२० ॥

अर्थ-जो नाडी अंगमें बहती हो, उसका अधिदेवता सामने हो, उसकी दिशाके सामने मुखकरै तो सबकार्यों-की फलदेनेवाली हो ॥ १२० ॥

यां दिशं वहते वायुर्युद्धं तद्दिशि दापयेत् ।
जयत्येव न सन्देहः शक्रोपि यदि
चाग्रतः ॥ २१ ॥

अर्थ-जिस दिशाका वायु देहमें चलता हो, उसी दिशामें युद्ध दे तो यदि इन्द्रभी आगे होवे तोभी जीत होय ॥ २१ ॥

सूर्ये पूर्वे चोत्तरे च चन्द्रे पश्चिमदक्षिणे ।

सेनापतिबलं त्वेवं प्रेषयेन्नित्यमा-
दरात् ॥ २२ ॥

अर्थ–सूर्य स्वर चलता हो तो पूर्व और उत्तर में यदि चन्द्रमा होय तो पश्चिम दक्षिणमें, सेनापति आदरके साथ सेनाको युद्धके लिये भेजे ॥ २२ ॥

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदंगे प्राणमेव च।
आकृष्य गच्छेत्कर्णान्ते जयत्येव पुरं-
दरम् ॥ २३ ॥

अर्थ–जिस नाड़ी में वायु वहताहो, उसही अंगमें प्राण होताहै उसको कानोंतक खैंचकर चले तो इन्द्रकोभी जीतले ॥ २३ ॥

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णांगे योभिरक्षति।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि
हन्यते ॥ २४ ॥

अर्थ–शत्रुओंके प्रहारोंसे जो पूर्ण अंगोंकी रक्षा करते हैं उनकी शक्तिको बलवान् शत्रुभी नहीं हनन कर-सक्तेहैं ॥ २४ ॥

अंगुष्ठतर्जनीवंशे पादाङ्गुष्ठे तथाध्वनिः।
युद्धकाले प्रकर्तव्या लक्षयोधो जयी
भवेत् ॥ २५ ॥

अर्थ–अँगूठा तर्जनीके बाँसमें और पैरके अँगूठेमें वैसेही ध्वनि करनी चाहिये ऐसा करनेसे लाख योधाओंका जीतने वाला हो ॥ २५ ॥

भूतत्वे ह्युदरं रक्षेत्पादौ रक्षेज्जलेन च। उरू च वह्नितत्त्वेन करौ रक्षेच्च वायुना ॥ व्योमतत्त्वे शिरो रक्षेदेवं योधो जयी भवेत् ॥ २६ ॥

अर्थ–जब पृथ्वीका तत्त्व हो, तब उदरमें चोट लगती है इससे चाहिये कि, जब पृथ्वीतत्त्व हो, तब पेटकी रक्षा ढाल आदिसे करै जलके वहनमें पादोंकी रक्षाकरै, अग्नितत्त्वके समय ऊरुओंको बचावे, वायुसे हाथोंको बचावे, आकाश हो जब शिरकी रक्षा करे तो ऐसा योधा जीतनेवाला होताहै ॥ २६ ॥

सूर्ये पूर्वे चोत्तरे च मुखं कृत्वा जयेन्नरः। चन्द्रे मुखं सदा कुर्याद्दक्षिणे पश्चिमे सुधीः ॥ २७ ॥ चिर युद्धे शुभश्चन्द्रः शीघ्रयुद्धे रविस्तथा ॥ दूरयुद्धे जयी चन्द्रः समीपस्थे दिवाकरः ॥ २८ ॥

अर्थ–सूर्यमें पूर्व और उत्तर दिशामें मुखकरके जीते, चन्द्रमामें सदा दक्षिण और पश्चिममें मुख करे तो जीते,

बहुत देरतक युद्ध करना होय तो चन्द्रमाका स्वर अच्छाहै, और जल्दी युद्ध करना होय तो सूर्यका और दूरके युद्धमें चन्द्र और समीपके युद्धमें सूर्य जीतनेवाला होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत्तु वाहनम्।
समुत्तरेत्पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत्॥२९

अर्थ-प्राणपवनको खैंचकर सवारीपर चढ़े, अर्थात् कुम्भक करके चढ़े रेचक करता हुआ उतरे तो सब कामोंकी सिद्धि करै ॥ २९ ॥

न कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्न-
गाः । न शत्रुव्याधिचौराद्याः शून्यस्था-
नाशितुं क्षमाः ॥ ३० ॥

अर्थ-न तो काल न विविध प्रकारके शस्त्र न साँप, न शत्रु न शरीरका रोग न चोर आदि क्रूरस्वभाववाले शून्य स्वरमें स्थित हुए नाश करनेको समर्थ हो सकतेहैं ॥३०॥

अयनतिथिदिनेशैः स्वीयतत्त्वेश्चयुक्तो
यदि वहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम् ॥
स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्व-
रेण प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि
लोके॥ ३१ ॥

अर्थ—उत्तरायणसूर्यकी तिथि और सूर्यस्वर अग्नितत्त्व वा वायुतत्त्वसे युक्त होकर कदाचित् दाहिना स्वर अपने आप चले जिस किसीका वह स्वरके स्तम्भमात्रसेही शत्रु की सेनाको जीते और केशवके लोकमें भी विघ्न न हो ॥ ३१ ॥

जीवेन शस्त्रं बध्नीयाज्जीवेनैव विकाशयेत् । जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वदा ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्वरसेही शस्त्र बाँधे और स्वरसेही निकासे तथा स्वरसेही फेंके तो युद्धमें सदा जीते ॥ ३२ ॥

वामनाड्युदये चन्द्रः कर्तव्यो वामसम्मुखः ॥ सूर्यचारे तथा सूर्यः पृष्ठे दक्षिणगो जयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जब बायाँ स्वर चलताहो तब चन्द्रमा बायें वा सम्मुख करना चाहिये, सूर्यके चलतेसमय सूर्यको वैसेही पीठ पीछे वा दाहिनेकरे ॥ ३३ ॥

दीप्ते कार्ये नाडी परदिशि जीविता सदा कुर्यात् ॥ शान्ते च जीवसहिता त्वेवं सिद्ध्यन्ति कार्याणि ॥ ३४ ॥

अर्थ—क्रूर काममें दूसरेकी ओर सदा निर्जीव नाडी

करै और शान्तकर्ममें चलतीहुई नाडी करै तो कार्य सिद्धहो ॥ ३४ ॥

तत्त्वबलान्नाडीबलमधिकं प्रोक्तं कप-
र्दिना नियतम् । ज्ञात्वैनं स्वरचारं नरो
भवेत्कार्यनिपुणमतिः ॥ ३५ ॥

अर्थ--अब इस शंकाको दूर करतेहैं, कि तत्त्वज्ञान तो बड़ा कठिन है, किसी किसीको होताहै तो वाशिष्ठजी वेश्वामित्रसे कहतेहैं, कि तत्त्वबलसे नाड़ी बल अधिक है, यह बात श्रीजटाधारी महादेवजी महाराजने परशुरामजीसे निश्च-यही कहदीहै, नियतकरके इस स्वरकी गतिको जानकर मनुष्य अपने कार्य करनेमें चतुर बुद्धि होय॥ ३५ ॥

इति स्वरबलयुद्धम्।

अथ राहुयुक्तायोगिनीबलयुद्धंव्या-ख्यास्यामः ।

न देयमिदं क्रूराय कुबुद्धयेऽशांताय गुरु-
द्रोह्यभक्तायेति । देयमिदं ब्रह्मचारिणे
धर्मतः प्रजापालदुष्टदण्डविधारिणे साधु-
रक्षकाय इत्येव प्रवचनमिति ॥३६॥३७॥

अर्थ--अब राहुयुक्त योगिनीबल युद्धको कहतेहैं यह बुद्धिमकार क्रूरबुद्धि शान्तिरहित गुरुद्रोही अभक्तको न देना

और ब्रह्मचारी जो हो और धर्मसे प्रजाका पालन जो करै (दुष्ट) खोटे पुरुषोंको जो दण्ड दे (साधु) अच्छे पुरुषोंको जो रक्षा करै ऐसेको दे इतनाही वचनहै, २ और यह वीप्सा वाक्यहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्रतिपन्नवम्यां प्रथमेर्धयामे राहुयुक्ता योगिनी पूर्वस्यां दिशि स्थिता भवति ॥ ॥ १ ॥ द्वितीया दशम्यां पञ्चमेर्धयामे राहुसहिता शिवा प्रतीच्यामुदेति ॥ २ ॥ तृतीयैकादश्यां तृतीयेर्धयामे तमः संमिलिता पार्वती याम्यां परिभ्रमति ॥ ॥३॥ चतुर्थ्यां द्वादश्यां तु सप्तमेऽर्धयामे राहुणा सह नगजा चोत्तरे ज्ञेया ॥ ४ ॥ पञ्चम्यामथ त्रयोदश्यामष्टमेऽर्धयामे-स्वर्भानुयुता गौरी नैर्ऋत्यामटति ॥ ५ ॥ ग्रुहतिथौ चतुर्दश्यां च कात्या-यनी पवनालये चायाति ॥ ६ ॥ सप्तमी पूर्णिमायां चतुर्थेर्धप्रहरे विधुंतुदेन साकं योगिनीमैशान्यां जानीयात् ॥ ७ ॥ अष्ट म्यमायां षष्ठेऽर्द्धयामे रुद्राणी तमोयुक्ता-

मेयामीक्ष्यते ॥ ८ ॥ इति राहुयुक्ता योगिनी उपग्राह्या द्वितीयेऽर्द्धयामे सैंहिकेययुता ॥ ९ ॥

अर्थ–पड़वा और नवमी को पहिले आधे प्रहर में राहुसहित योगिनी पूर्वदिशा में स्थित होती है ॥ १ ॥ दोयज और दशमी पाँचवें आधे प्रहरमें राहुके साथ योगिनी पश्चिममें उदय होतीहै ॥ २ ॥ तीज और एकादशी को तीसरे आधे याममें राहु के साथ योगिनी दक्षिण में घूमती है ॥ ३ ॥ चौथ और द्वादशीके सातवें आधे याममें राहुके साथ योगिनी उत्तरमें जाननी ॥ ४ ॥ पञ्चमी और त्रयोदशी के आठवें आधे प्रहरमें राहुके साथ योगिनी दूसरे नैर्ऋत्य कोणमें रहतीहै ॥ ५ ॥ षष्ठी और चौदशको राहुके साथ योगिनी दूसरे आधे याममें वायुकोणमें चलतीहै ॥ ६ ॥ सप्तमी और पूर्णिमामें चौथे आधे प्रहरमें राहुके साथ योगिनी ईशान कोणमें जाननी ॥ ७ ॥ अष्टमी और अमावसको छठे आधे याममें योगिनी राहुके साथ अग्निकोणमें दिखाईदेती है ॥ ८ ॥ ऐसे राहुके साथ योगिनी ग्रहण करनी चाहिये ॥ ९ ॥

अथ व्यूहादिभिर्युद्धकथनम्।

ये राजपुत्राः सामन्ता आप्ताः सेवकजातयः॥

तान्सर्वानात्मनः पार्श्वे रक्षायै स्थापये-
न्नृपः॥३८॥परस्परानुरक्ता योधाः शार्ङ्ग-
धनुर्धराः। युद्धज्ञास्तु रथारूढास्ते जय-
न्ति रणे रिपून्॥३९॥एकः कापुरुषो दीर्णो
दारयेन्महतीं चमूम्॥ तद्दीर्णमनुदीर्यन्ते
योधाः शूरतमा अपि॥४०॥ अतो वै का-
तरं राजा बलेनैव नियोजयेत्। द्वाविमौ
पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ॥ ४१ ॥
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो
हतः॥ यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परि-
वेष्टितः॥ ४२॥ अक्षयं लभते लोकं यदि
क्लीबं न भाषते। मूर्च्छितं नैव विकलं ना-
शस्त्रं नान्ययोधिनं॥४३॥पलायमानं शरणं
गतं चैव न हिंसयेत्॥ भीरुःपलायमानोपि
नान्वेष्टव्यो बलीयसा॥ ४४ ॥ कदाचि-
च्छूरतां याति शरणे कृतनिश्चयः॥
संभृत्य महतीं सेनां चतुरंगां महीपतिः॥
॥४५॥व्यूहयित्वाऽग्रतः शूरान्स्थापयेज्जय
लिप्सया। पृष्ठेन वायवो वांति पृष्ठे

भानुर्वयांसि च ॥ ४६ ॥ अनुप्लवन्ते मेघाश्च यस्य तस्य रणे जयः ॥ अपूर्णे नैव मर्तव्यं संपूर्णनैव जीवनम् ॥ ४७ ॥ तस्माद्धैर्यं विधायैव हन्तव्या परवाहिनी ॥ जिते लक्ष्मीर्मृते स्वर्गः कीर्तिश्च धरणीतले ॥ तस्माद्धैर्यं विधायैव हन्तव्या परवाहिनी ॥ ४८ ॥

अर्थ– अब व्यूहादि उपायोंसे युद्ध कथन करते हैं, जो राजपुत्र (सामन्त) अर्थात् जो अपने भाई बेटे हों, तथा अपने आधीन हों यथार्थ बात कहनेवाले नौकर उन सबोंको अपने पास चारों ओर राजा रक्खे और जो योधा आपसमें प्रेम रखतेहों, शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले, युद्धरीति जाननेवाले घोड़ोंके सवार वे संग्राममें शत्रुओंको जीततेहैं, एक भी कायर भग्गू सेनामें होवे तो बड़ी भारी सेनाको हरवा देताहै, उस डरायेहुये शूरवीरके योधाभी पीछे भागजातेहैं, इस कारण राजा डरपोक सेनापति वा पदचरादि नौकर सनामें भरती न करै, दो पुरुष सूर्यके लोकसे ऊपर जातेहैं, योगयुक्त संन्यासी और जो संग्राममें सम्मुख होकर मरै, जहाँ २ शूर वीर शत्रुओंसे घिराहुआ माराजाय वह (अक्षय) स्वर्गलोकको पाताहै, यदि चेत् क्लीववचन अर्थात्

हीनवचन न बोले तो जिस शत्रुको मूर्च्छा आगई हो और घबरा रहाहो, हथियार पास न हो,वा दूसरेसे लड़ाई कर रहा हो, भाग निकलाहो शरणागत आगया हो ऐसेको न मारे, और डरपोक शत्रु भागचला हो तो बलवान् उसको ढूंढे नहीं, क्योंकि कभी वह शूरताको प्राप्त होजाय तो संग्रामका निश्चयकर अर्थात् अपना मरना ठानकर वह मारदेताहै, इस हेतु भागेहुए शत्रुको ढूँढ़ना योग्य नहींहै॥ बहुतसी सेना इकट्ठी करके चतुरंगिणी अर्थात् हाथी, रथी; घोड़ोंके सवार, और पैदल एकत्र करके इनका व्यूह बनाकर सबसे आगे शूरवीरोंको रक्खे जीतनेकी इच्छासे जिसकी सेनाकी पीठ पाछे, सतर २ का वायु चलताहो और पीठपीछे सूर्यहो, तथा पक्षी पीछे उड़तेहों पीठपीछेकी वर्षाहो उसकीही रणमें जीत होतीहै यदि शत्रुओंको बन्धस्वरमें राखे तो न मरै और चलते स्वरको राखेतो माराजाय, इसहेतु धैर्य करकेही शत्रुकी सेना मारनी चाहिये, जीत जाय तो धन मिलै और रणमें माराजाय तो स्वर्ग मिलै, पृथिवी पर कीर्तिहो इससे धैर्य करकेही शत्रुकी सेना मारनी चाहिये ॥३८॥३९॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥४६॥४७।४८

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे॥ यदाजौ निधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः॥ ४९॥

अर्थ-वसिष्ठजी कहते हैं हेविश्वामित्र ! जो रोगी होकर घरमें मरना वह क्षत्रियोंकेलिये अधर्मसे मरना है जो कि, संग्राम में मरना है वह इसका सनातन धर्म है ॥ ४९ ॥

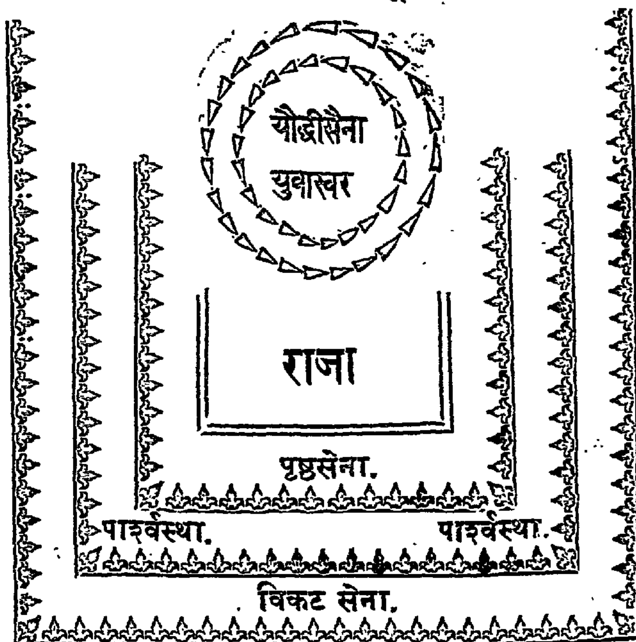
अथ व्यूहानाह।

युवास्वरे मध्यसेना युद्धं कुर्यादतंद्रिता। द्वे सेने पार्श्वयोश्चैका पृष्ठतो रक्षयेत्सदा ॥ एकां विकटसेनान्तु दूरस्थां भ्रामयेद्युधि ॥ ५० ॥

अर्थ-युवास्वरवाली मध्यसेना भ्रमतीहुई, सामनेके शत्रु से युद्धकरै, दो दोनों पछवाड़ोंमें हों, और एक पीठपीछे रक्षाकरै, और एक विकटसेना दूर भ्रमतीरहै ॥ ५० ॥

उसका चित्र आगे देखो-

प्रथमारम्भव्यूह ।



दण्डव्यूहश्च शकटो वराहो मकरस्तथा । सूचीव्यूहोथ गरुडः पद्मव्यूहादयो मताः ॥ ५१ ॥ एतान्व्यूहान्परिव्यूह्य सेनापतिरयेत्सदा । बलाध्यक्षादिकान्सर्वान्सर्वदिक्षुनियोजयेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ–दण्डकार दण्डव्यूह, गाड़ीके आकार शकटव्यूह

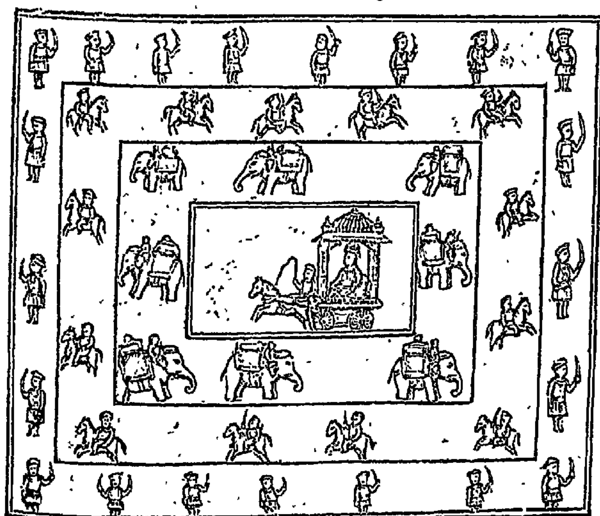
सूवरके आकार वराहव्यूह, मच्छीकी सदृश मकरव्यूह, सूईके आकार सूचीव्यूह, गरुड़पक्षीकेसा गरुड़व्यूह, कमलके आकार कमलव्यूह, इत्यादि जानने, इतने तथा और और व्यूह बनाकर सेनापति सदा चलै, बलाध्यक्षादिकोंको सब दिशाओंमें योजनाकरै ॥५१॥५२॥

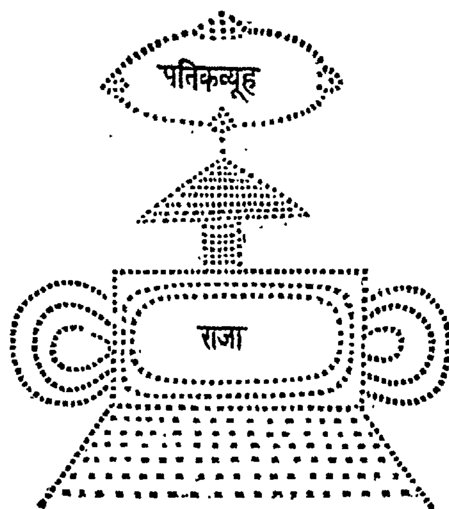
दण्डव्यूह ।

सर्वतोभये दण्डव्यूहरचना कार्या ।

अर्थ—चारों ओरसे जब घिरजावे तब दण्डव्यूह रचके युद्धकरै.

आगे इनके चित्र देखो—





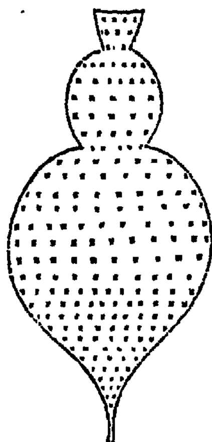
पृष्ठतो भये शकटव्यूहः ।

अर्थ-पछिसे भय हो तब शकटव्यूह रचै ॥

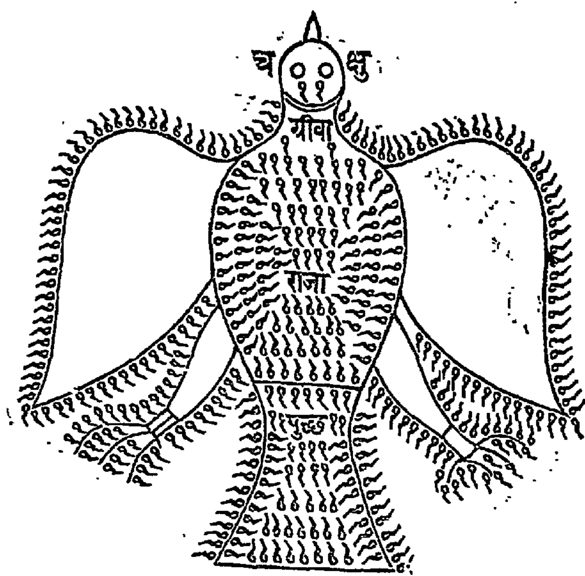
पार्श्वभये वराहव्यूहो वा गरुडव्यूहो विधेयः ॥ ५३ ॥

अर्थ-दाहिनीओरसे और बांईओर भय उपस्थित होनेपर वराहव्यूह वा गरुडव्यूह करना चाहिये ॥ ५३ ॥

वराहव्यूह।



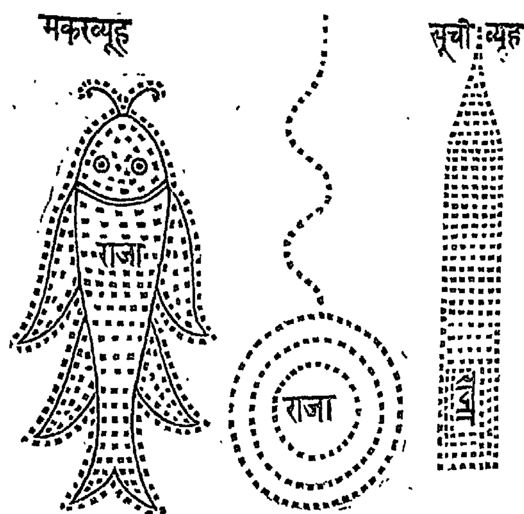
गरुड़व्यूह ।



अग्रतो भये पिपीलिकाव्यूहः।

अर्थ–आगेसे भयहो जब पिपीलिका व्यूह रचै॥ १॥

पिपीलिकाव्यूह।



पद्मव्यूह ।



दिग्व्यूह.

अर्द्धचन्द्र



चतुष्पथव्यूह

राजा

सर्वतोभद्र ।

ई. पू. अ.

षष्ठेनैर्ऋत्यमुखः सप्तमेपश्चिममुखः अष्टमेवायव्यमुखः

चतुर्थेदक्षिणमुखः प्रथमेउत्तरमुखः

यामार्द्धं
दिनयुद्धचक्रम् १
रात्रौ व्यलीकः

तृतीयेऽग्निमुखः द्वितीयईशानमुखः

पंचमे पूर्वमुखः

सेनाशयनव्यूहम् ।

पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति पदाति

द्वारपाल द्वारपाल द्वारपाल द्वारपाल

परिवारः सेनापति अग्रज नायक

राजा

स्वल्पा युद्धं कुर्याद्बह्वीसेना च सर्वतो भ्रमेत् समभूमौ चाश्ववारा युद्धं कुर्य्युः। जले करितुंबीदृतिनौकाभिर्युद्धं विधेयम् । पदातयो भुशुंडिं गृहीत्वा वा धनूंषि चादाय वने वृक्षेष्वंतर्धाय वाऽऽरूढा भूत्वा युद्धयेरन् । स्थले चर्म्मखड्गभल्लैर्युध्येरन् । युद्धाहंकारिणस्तुंगा अग्रे स्थाप्या अन्ये पश्चात् ॥ ८१ ॥

अर्थ–थोड़ीसी सेना लड़तीरहै, और घनी सेना चारों ओर फिरतीरहै, इकसार भूमिमें सवार लड़ें. जलमें हाथी तूंबी मसक नावपर चढ़के युद्धकरना, पैदल बंदूक ले २ कर वा धनुष ले लेकर वनमें वृक्षोंकी आड़में हों, वा उनपर चढ़कर लड़ें, और थलहीमें जहाँ ऊँची नीची धरती हो वहाँ ढाल तलवार भाले बरछी आदिसे लड़ें, युद्धके अहंकारियोंको सेनाके अग्रमें स्थापनकरै, औरोंको पीछे रक्खे ॥ ८१ ॥

अथ सेनानयः ।

तत्रादौ व्याकरणशिक्षां वक्ष्यामो राज्ञे । नृपतिर्लोट्लकारस्य कुर्यात्कंठ-

स्थितानि च। रूपाणि कार्य्यसिद्धयर्थं ह्याज्ञैषा मम गाधिज ॥ मध्यमपुरुषस्यैव प्रयोगान्यो विचिन्तयेत् ॥ ५२ ॥ सेनानीः प्रतिदिनं सम्यङ्न केनापि स हन्यते। मध्यमपुरुषोद्भूताः प्रयोगाः सर्वसिद्धिदाः॥५३॥ तैरेव साधयेदाज्ञां पुरुषा राजभृत्यकाः ॥ ५४ ॥

अर्थ–अब सेना के कवायद का प्रकरण कहतेहैं, उसके आदिमें व्याकरणकी शिक्षाको कहतेहैं कि, राजाके लिये कितना व्याकरण पढ़ना चाहिये, राजा नव लकारों के रूप छोडकर केवल लोट् लकार के रूपों को कार्य्यकी सिद्धिके लिये कंठ करे, हे विश्वामित्र, मेरी यह आज्ञाहै और जो सेनापति लोट् लकारके मध्यम पुरुषकेही रूप याद करे, वह किसीसे भी न माराजाय, मध्यमपुरुषके बहुवचनके प्रयोग ही सिद्धिके देनेवाले हैं छोटे २ ओहदेदार उनसे ही राजा की वा अपनी आज्ञाका पालन करें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथोदाहरणसहितो धातुरूपपाठः।

भूसत्तायाम्	पत्लृपतने	डुकृञ् करणे
भव	पत	कुरु
भवतम्	पततम्	कुरुतम्
भवत	पतत	कुरुत
चल्चलने	चितीसंज्ञाने	गम्लृगतौ
चल	चेत	गच्छ
चलतम्	चेततम्	गच्छतम्
चलत	चेतत	गच्छत
ष्ठा गतिनिवृत्तौ	श्रु श्रवणे	दृशिर् प्रेक्षणे
तिष्ठ	शृणु	पश्य
तिष्ठतम्	शृणुतम्	पश्यतम्
तिष्ठत	शृणुत	पश्यत
दा दाने	ग्रह उपादाने	पृच्छ ज्ञीप्सायाम्
देहि	गृहाण	पृच्छ
दत्तम्	गृह्णीतम्	पृच्छतम्
दत्त	गृह्णीत	पृच्छत
ब्रूञ्व्यक्तायांवाचि।	भक्ष भक्षणे	पा पाने
ब्रूहि	भक्षय	पिब

ब्रूतम्	भक्षयतम्	पिबतम्
ब्रूत	भक्षयत	पिबत
इषु इच्छायाम्।	ज्ञा अवबोधने	आप्लृ व्याप्तौ
इच्छ	जानीहि	आप्नुहि
इच्छतम्	जानीतम्	अप्नुतम्
इच्छत	जानीत	आप्नुत
कुथि हिंसायाम्।	त्यज त्यागे	हन् हिंसागत्योः।
कुंथ	त्यज	जहि
कुन्थतम्	त्यजतम्	हतम्
कुन्थत	त्यजत	हत
शासुअनुशिष्टौ।	इण् गतौ।	विद ज्ञाने
शाधि	इहि	विद्धि
शिष्टम्	इतम्	वित्तम्
शिष्ट	इत	वित्त
अस् भुवि।	रुधिरावरणे	शीङ् स्वप्ने।
एधि	रुन्धि	शेष्व
स्तम्	रुन्धम्	शयाथाम्
स्त	रुन्ध	शेध्वम्
अज् गतौक्षेपणेच।	व्रजगतौ।	क्रमु पादविक्षेपे।
अज	व्रज	क्राम्य

भजतम्	व्रजतम्	क्राम्यतम्
भजत	व्रजत	क्राम्यत
दह् भस्मीकरणे।	मिह सेचने।	णीभ् प्रापणे।
दह	मेह	नय
दहतम्	मेहतम्	नयतम्
दहत	मेहत	नयत
गै शब्दे।	जि जये	कृषविलेखने
गाय	जय	कृष
गायतम्	जयतम्	कृषतम्
गायत	जयत	कृषत
मुच्लृ मोक्षणे।	सिंच सिंचने।	कृन्त कर्तने।
मुञ्च	सिञ्च	कृन्त
मुञ्चतम्	सिञ्चतम्	कृन्ततम्
मुञ्चत	सिञ्चत	कृन्तत
क्षिप प्रेरणे।	कॄ विकिरणे।	मिल मिलने।
क्षिप	किर	मिल
क्षिपतम्	किरतम्	मिलतम्
क्षिपत	किरत	मिलत
लिख लिखने।	मनु ज्ञाने	व्यध् वेधने।
लिख	मन्यस्व	विध्य

लिखतम्	मन्येथाम्	विध्यतम्
लिखत	मन्यध्वम्	विध्यत
रच रचने	गण संख्याने ।	तनु विस्तारे
रचय	गणय	तनु
रचयतम्	गणयतम्	तनुतम्
रचयत	गणयत	तनुत
भुजपालनाभ्यवहारयोः ।	भिदिर् विदारणे ।	या प्रापणे
भुङ्धि	भिन्धि	याहि
भुङ्क्तम्	भिन्तम्	यातम्
भुङ्क्त	भिन्त	यात
अद् भक्षणे ।	जागृ निद्राक्षये ।	विश प्रवेशने
अद्धि	जागृहि	विश
अत्तम्	जागृतम्	विशतम्
अत्त	जागृत	विशत

उपसर्गयोगे प्रवेशनार्थं विहायैवं रूपाणि

उपविश

उपविशतम्

उपविशत

इति धातुपाठः ।

अथैतेषामुदाहरणक्रमः।

कोटं वेष्टयत कोटे प्रविशत,कोटमुपरि यात, अश्वानुपर्यारोहत, अश्वांश्चारयत, अश्वान् जलं पाययत, अश्वपतयो भल्लेनैव बाटिकाभोजनं पाचयत, जलं पिबत, द्विजातयश्चणकान्नं चर्वयत, तथा जलं पिबत, जलाऽभावे शीतलीकुरुत, अश्वानारुह्य धावत, पदातयः समीकं परवाहिनीं यात, खड्गैः कृन्तत, भल्लैर्विध्यत, रंजकदंशितं दहत, कपाटे कुन्तैस्त्रोटयत, वटिका आयान्ति निपतत, दुष्टान् कुन्थत, डमरुं वादयत, गीतं गायत, वामपार्श्वे अयत, दक्षिणपार्श्वे इत,सपदि व्रजत, शनैर्व्रजत, अनुव्रजत, अग्रे व्रजत, तूष्णीं भवत, भीरूंस्त्यजत, शूरान् विध्यत, चर्मणा वटिकां रुन्ध,रंजकं दत्त, उपाऽऽगच्छत, दूरं गच्छत, शेध्वम्, जाग्रत, वस्त्राणि परिधापयत,कटिं बध्नीत,शस्त्राणि धारयत, प्रधनार्थं गच्छत,पदातयोऽग्रे,अश्वपतय, पश्चात्, गजारूढास्तदनु, रथिनोन्तिमस्थाः,

पदातयस्तिष्ठत समीके, अश्ववाराः प्राच्यामित, गजपाः पश्चिमे चलत।

धावनप्रकारः।

अश्वेषु पल्याणमारोपयत, प्रग्रहम् प्रतिहत, अंकुशेन हस्तिनं रुन्ध, अश्वेष्वारोहयत, हस्तिपका ध्वजान्गृह्णीत, अश्वपतयो युद्ध्यत, अनश्वे भारं वहत, उष्ट्रैर्भारोद्वहनं विदधत, उष्ट्रपका उष्ट्रान्नयत, अश्वपा मेहत, सारथिनः शकटेषु वस्तूनि स्थापयत, वृषभान् योजयत, चलत, दाशाः कबंधान् दोलासु क्षिपत, व्रणसहितानपि, सूर्यपृष्ठगाश्चलत, सूर्यदक्षिणगाश्चलत, वायुपृष्ठगाश्चलत, वायुदक्षिणगाश्चलत, चन्द्राभिमुखाश्चलत, चन्द्रवामगाश्चलत ॥

अन्यच्च।

ऋजवः संप्रयात आलीढम्, प्रत्यालीढम् चलत, तिष्ठत.

प्राङ्मुखाः, प्रत्यङ्मुखा, अवाङ्मुखाः, उत्तरास्याः, आग्नेय्याम्, वायव्याम्, नैर्ऋत्याम्, ऐशान्या

म,एकस्य प्रत्यक् एको गच्छतु,पूर्ववत्,कमलाकाराः,व्यलीककमलाकाराः,धनुरारोपणम्, तोलनं लस्तकं गृहाण, प्रहारम्, अवहारम्,भुशुण्डीलक्ष्यम्, अस्त्राघातं, संहारास्त्रम्, नृपाभिमुखाः प्रणम्य गच्छत, श्वःश्वः शिबिरम्, सन्ध्याकालो जातो युद्धेनालम् ॥ १ ॥

अन्यः।

धनुराकाराः, उत्तिष्ठत, चलत, निपतत, धावत, मारयत, शेध्वम्, भवत, पतत, कुरुत, चेतत, गच्छत, अयत, तिष्ठत, शृणुत, पश्यत, दत्त, गृह्णीत, पृच्छत, ब्रूत,भक्षयत,पिबत,इच्छत,जानीत, आप्नुत, कुन्थत, त्यजत, हत, शिष्ट, इत, वित्त, स्त, दत्त, रुन्ध, अजत, व्रजत, क्राम्यत, दहत, मेहत, नयत, मायत, क्रीडत, जयत, कृषत, मुंचत, सिंचत, कृन्तत, क्षिपत, किरत, मिलत, लिखत, मन्यध्वम्, विध्यत, रचयत, गणयत, तनुत, भुङ्क्त, भिन्त, यात, अत्त, जागृत, रोहत, उपविशत, इति सेनानीपाठः ॥

अथावश्यकाऽव्ययानाम्पाठः ।

आङ्–मा, नो-आम्, बाढम्, अद्य, सायम्, प्रातः, श्वः, ह्यः, परश्वः, अन्येद्युः, उभयेद्युः, त्वम्, युवाम्, यूयम्, अहम्, आवाम्, वयम्, संज्ञा, सः-तौ-ते अलम्, सपदि, तूर्णम्, उपरि, अधः, अ-प्र-अनु-उप– ॥

पदातिक्रमः ।

समोच्चा द्विपदा ग्राह्या ह्यसमा न कदाचन । कूर्दने धावने ये वै समास्ते कार्यसाधकाः ॥ ५५ ॥ पश्चाद्गमनं स्थिरीकरणं शयनं धावनं तथा । चलनं परसेनायां पार्श्वदिक्षु च कारयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ–ऊँचाईमें एकसे हों ऊंचे नीचे न हों कूदने और भागनेमें समान जो हों वे कार्यसाधक हैं, इनको पश्चाद्गमन और स्थिरीकरण सिखाना अर्थात् पीछे को हटना और ठहरना, सोना, भागना, शत्रुकी सेनामें चलना पछवाड़ो में चलना करावे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

षष्ठस्थाने ग्रहा येषां क्रूराःपापाः पतन्ति हि ॥ ते युद्धे युद्ध्यतां वीरानान्ये कार्यक-

रा यतः ॥ ५७ ॥ व भ ध ड छ क वर्णा
ह्यादि मायां प्रकल्प्य तदनु हि अच अर्णा
णादिकाः सर्वलेख्याः । उपरिगत भवां-
स्तान्स्थाप्य सर्वान्क्रमेण भवति च युव-
यस्या युध्यतां सा प्रसेना ॥

अर्थ—जिनके छठे स्थानमें क्रूर रवि मंगल और पाप शनि राहु केतु ये पडेहों वे वीर युद्धमें लड़ें और कामके नहीं होते,. अथवा च- व- भ- ध-ड-छ-क-ये अक्षर पहिली सेनामें लिखे इसके पीछे स्वरवर्ण अकारादि सब लिखे ऊपर व्यंजनों के स्वरों को क्रमसे स्थापित करे जिस सेना का युवास्वर हो वही प्रथम हो के लड़े ॥

उदाहरणम् ।

यथा, विवस्वान्, भरत, धुन्धुमार, डित्थ,
छत्रपति, कुक्षि,

अर्थ—इन अक्षरों के नामवाले योधाओंको प्रथम सेना युवास्वरमें युद्ध ठानैं तो जीते ॥ १ ॥

अस्या वस्त्राणि पीतानि ध्वजा पीता च
तद्वति । युद्धयूपस्तथा पीतश्चतुरस्रांक-
संयुतः ॥ ५८ ॥

अर्थ—इसके पीले वस्त्र, पीली झंडी-वैसाही युद्ध यज्ञका वडा झण्डा जहां गाडाजाय वहां सेना ठहरे। चौकोर चिन्हका ॥ ५८ ॥

श्वेतरक्तहरित्कृष्णा चान्या सेना हि त्वादिवत् । कर्तव्या पार्थिवैर्नित्यं जयलाभसुखेच्छुभिः ॥ ५९ ॥

अर्थ—हेविश्वामित्र! जय और लाभ सुखके वास्ते पहिली सेनाका जैसा क्रम है उसकी नाई चार सेना चाहनेवाले राजाओंको श्वेत, लाल, हरी, और काले रंगवाली करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्यौ यथाक्रमम् । अधीशाः पंच सेनानां विज्ञेयाः शृणु गाधिज ॥ ६० ॥

अर्थ—हे विश्वामित्र ! ब्रह्मा १ विष्णु २ रुद्र ३ चन्द्र ४ सूर्य ५ ये पांच देवता पांच सेनाओंके स्वामी हैं ॥ ६० ॥

ब्रह्मा रुद्रबले जीयाद्विष्णुश्चन्द्रबले जयेत् । रुद्रःसूर्यबलं प्राप्य चन्द्रो ब्रह्मबलं युधि ॥ ६१ ॥ सूर्यो विष्णुबलं लब्ध्वा जयेच्चैव न संशयः ।

अर्थ—ब्रह्माजी महादेवका बल पाकर जीततेहैं, विष्णु चन्द्रमाके बलमें जीततेहैं, और रुद्रजी सूर्यका बल पाकर

जीततेहैं, चन्द्रमा ब्रह्माके बलसे युद्धमें जीततेहैं, सूर्यनारायण विष्णुके बलको पाकर जीततेहैं, इसमें संदेह नहीं॥ ६१॥

अ ब्रह्मा विष्णुरी रुद्र उश्चन्द्रस्त्वे च भास्करः। ओ ज्ञेयःपार्थिवैर्नित्यं जन्य-शास्त्रविचक्षणैः॥ ६२॥

(अ) ब्रह्मा (इ) विष्णु (उ) रुद्र (ए) चन्द्र (ओ) सूर्य, युद्धशास्त्रके चतुर राजाओंने जानना॥ ६२॥

प्राप्य स्वं स्वं बलं सेनाःपूर्वोक्ता युद्धगा यदि। क्षणार्धेन अरीन्सर्वान्मारयंतीति रुद्रवाक्॥ ६३॥

अर्थ—पहिले कही हुई सेना यदि अपना २ बल पाकर युद्धको जाय तो आधी २ क्षणमें सब शत्रुओंको मारें, यह महादेवजीकी वाणी है॥ ६३॥

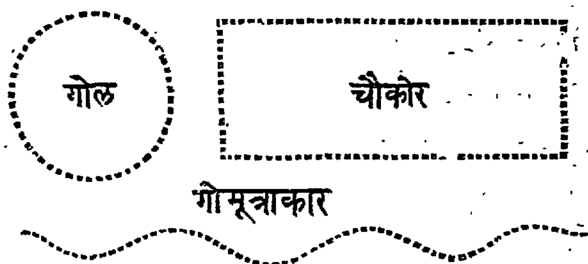
इतिपदातिक्रमः।

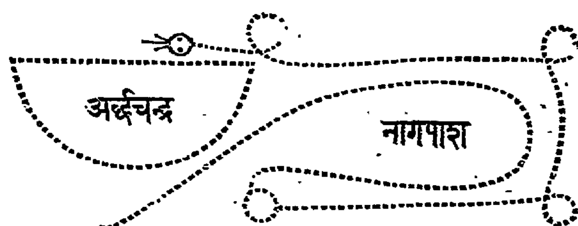
अथाश्वक्रमः।

मण्डलं चतुरस्रं च गोमूत्रं चार्द्धचन्द्र-कम्। नागपाशक्रमेणैव भ्रामयेत्कटपंच-कम्॥ ६४॥

अर्थ—गोलाकार- चौकोर- गोमूत्राकार- अर्धचन्द्राकार

और नागपाश क्रमसे घोड़ेकी कवायद करानेसे वह फिर कहीं नहीं अटकता भ्रमावे ॥ ६४ ॥





इन पाँच गतियोंसे जो घोडोंको फिरा लेगा उसका घोड़ा कहीं नहीं अटकेगा ॥ ६५ ॥

इत्यश्वक्रमः ।

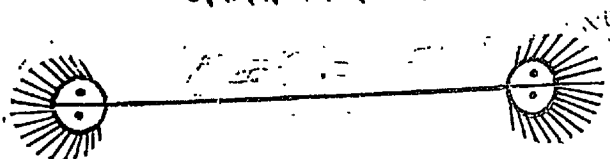
अथहस्तिक्रमः।

(कार्य्यम्)

गजानां पर्वतारोहणम्, जलभ्रमणम्-धावनम्, उत्थानम्, उपविशनम्, अलातचक्रादिभिर्भीतिवारणम् कार्यम्।

अर्थ-हाथियोंका, पहाडोंपर चढ़ाना, जलमें चलना भागना, उठना, बैठना, अग्निचक्रादिकोंसे भय दूरि करना सिखावे ॥ ६४ ॥

अलातचक्ररूपम्।



इति गजक्रमः।

रथः।

रथाश्वसाधनंतु समादिस्थले विधेयम्॥

अर्थ-रथके घोडोंको समआदि स्थलमें अभ्यास करना चाहिये ॥

इति रथक्रमः।

अथ सेनापतिकरणविधिं वक्ष्यामः ।
शृणु भो राजर्षे विश्वामित्र ! आकार-विद्याबलयुक्तं क्षत्रियं सेनापतिं विदध्यात् तस्यैते नियमाः समस्तवाहिनीमेकाकार दृष्ट्यावलोकयत् अन्यच्च सर्वान्पदातीन् परिश्रमसदृशमधिकारं दद्यात् व्यूहरच-नायामतिनिपुणश्च भवेत् स एव सेना नीर्विधेय इति ।

अर्थ—अब सेनापति करनेकी विधि कहतेहैं. सुनो हे राजऋषि विश्वामित्र ! आकारविद्या और बलसे जो युक्त हो ऐसे क्षत्रियको सेनाध्यक्ष करै, उसके ये नियमहैं सारी सेनाको एकसम दृष्टिसे देखे और सब पैदल आदि परिश्रमके सदृश अधिकार (ओहदा) दे, और व्यूहरचनामें अति-चतुर हो यही सेनानी करना चाहिये ॥

अथ शिक्षा ।

तत्रादौ पठनपाठनविधिंब्रूमः। आदौ क्षात्रकोश-व्याकरणसूत्राण्यध्येतव्यानि । द्वावध्यायौ सप्तमाष्टमौ मनोर्मिताक्षराव्यवहाराध्यायश्च जयार्णवविष्णुयामलविजयाख्यस्वरशास्त्रा

ण्यपराणिच पठितव्यानि ततः सरहस्य धनुर्वेदमापठेत्।

अर्थ-अब पठनपाठनकी विधि कहते हैं, पहिले क्षात्रकोश व्याकरण सूत्र पढ़ने चाहिये दो अध्याय सातवां और आठव मनुका तथा व्यवहाराध्याय मिताक्षरा धर्मशास्त्र, जयार्णव, विष्णुयामल, विजयाख्यतंत्र और स्वरशास्त्र पढ़ने चाहिये, इनको पढकर रहस्यसहित धनुर्वेद गुरुसे पढ़े॥

हन्तव्याऽहन्तव्योपदेशः।

सुप्तं प्रसुप्तमुन्मत्तं ह्यकच्छं शस्त्रवर्जितम्।
बालं स्त्रियं दीनवाक्यं धावन्तं नैव घात-
येत्॥ ६५॥

अर्थ-अब किसको मारना चाहिये, और किसको नहीं, सोये हुयेको, गाढ़निद्रामें सोतेहुएको और नशा पिये हुएको, जिसका धोती वा लंगोट खुलगया हो उसको, जिसके पास हथियार न होवे उसको, तथा बालक अ-र्थात् बारह वर्षसे कम अवस्थावालेको सज्जनस्त्रीको, और जो दीन वचन बोले उसको, रण छोड़के भागतेहुएको, धर्मात्मा न मारे॥ ६५॥

धर्मार्थं यस्त्यजेत्प्राणान्किं तीर्थैश्चजपै-

श्च किम् । मुक्तिभागी भवेत्सो वै निरयं नाधिगच्छति ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा स्त्रीणां बालवधेषु च । प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहर्षिवसिष्ठप्रणीता वासिष्ठी धनुर्वेदसंहिता समाप्ता.

अर्थ–हे विश्वामित्र ! धर्मके अर्थ जो प्राणोंको छोड़े उसको तीर्थ और व्रतोंसे क्या है, वह स्वर्ग और मोक्ष पाताहै नरकमें नहीं जाता और जो ब्राह्मण गऊ स्त्री बालक इनके लिये प्राण देताहै, वह मोक्षका भागी होताहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

इति श्रीवासिष्ठीधनुर्वेदसंहिताहरितगोत्रोद्भव स्वामि रामरक्षपालविरचित भाषाटीकासमेता संपूर्णतामयासीत् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय–बंबई.